आर्काव्यों में देवर्षि नारद

आर्काव्यः

वैदिक साहित्य के पश्चात् लोकिक साहित्य का उदय होता है। संस्कृत का यह लोकिक साहित्य भाषा, भाव तथा विषय-तीनों ही दृष्टियों से नितांत महत्वपूर्ण है। किन्तु वैदिक साहित्य और लोकिक साहित्य के मध्यवर्ती युग में दो ऐसे विपुलकाय आर्क महाकाव्य उपलब्ध होते हैं, जो चसतः इन दोनों युगों को स्पष्टतः पृथक् कर देते हैं। ये दोनों महाकाव्य रामायण और महाभारत हैं। जो परवर्ती सम्पूर्ण लोकिक संस्कृत साहित्य के लिए उपजीवित बन गये हैं। अवांतर कालीन कवियों ने इन दोनों मर्मस्तरी काव्यों से स्कृति और प्रेरणा ग्रहण करके साहित्य की विभिन्न विधाओं को विविधरूपी काव्यपुस्तकों से अलंकृत किया है। व्यापक भाव सम्पन्न होने के कारण ही रामायण और महाभारत आर्काव्यों के साथ-साथ उपजीवित काव्य भी कहलाते हैं।

रामायण में देवर्षि नारद

रामायणः

अनादि, अकृत्त एवं अपौरुषेय वैदिक साहित्य के पश्चात् सर्वप्रथम आर्क ग्रन्थों में वाल्मीकि रामायण का नाम आता है। इसे लोकिक संस्कृत का प्रथम ग्रन्थ माना गया है। महर्षि वाल्मीकि-प्रणीत 'रामायण' भारतमूर्ति का एक ऐतिहासिक महाकाव्य है, आदि काव्य है। जो विविध काव्यों तथा नाटकों को अपनी विचित्र यत्रा के लिए पपेय प्रदान करते में सर्वथा समर्थ है। इस महाकाव्य में महर्षि वाल्मीकि ने प्राचीन भारत की सामाजिक अवस्था के काव्यात्मक वर्णन के साथ-साथ रामकथा के माध्यम से रम एवं सीता के उदात्त जीवन का चित्रण अत्यन्त मर्मस्तरी एवं ललितात्मक में किया है।

रामायण में कुल 7 काण्ड, 500 सर्ग तथा 24000 श्लोक हैं। श्लोकसंख्या के आधार पर ही इसे “चतुर्विंशतिसाहस्री सहिता” भी कहा जाता है:-
“चतुर्विश्लेषणसहायगी शलोकानमुक्तावनृत्य।
तथा सर्वशलानु पञ्चदकृष्णानि तत्तदरम्य।”

कथा प्रसिद्ध है कि व्यध के बाण से विद्ध हुए क्रौळ के लिए विलाप करनेवाली कृष्ण का कहना शब्द सुनकर ऋषियव भूल हुए से अक्सर यह शलोक निकड पड़ा :-

“भा निधाद प्रतिष्ठास्वपनम: शाश्वती: समा:।
यतु क्रौळमिश्रुतानादेवमध्यवधी: कामापमितम्।”

अर्थतः है निधाद! तुम्हारे काम से मोहित इस क्रौळ पक्षी को मारा है, अतः तुम सड़ के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त न करो।

रामायण महाकाव्य का प्रारंभ ‘ॐ तपः स्वाध्यायं निसर्गम’ से होता है और अन्त ‘पठनु हिजः’ आदि महात्म सूचक श्लोक से होता है। महर्षि के कल्याणमयी वाणी सुनकर स्वयं ब्रह्मा ने उपस्थिति होकर उन्हें रामचरित लिखने की प्रेरणा दी- “रामस्य चरितं कृत्वं कुरु त्वमृतिस्तमः।” रामायण की रचना इसी प्रेरणा का फल है। वाल्मीकि अनुद्धुप छन्द के अविभाजक माने जाते हैं। उपनिषदों में भी अनुद्धुप छन्द है, परन्तु लौकिक संस्कृत में व्यवहृत होने वाले सम अक्षर से युक्त अनुद्धुप का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि ने ही किया, जिसमें लघु-गुहा का निवेश नियमित था। गायत्री मन्त्र में चौबीस अक्षर हैं तथा रामायण में कुल चौबीस हजार श्लोक हैं; इन श्लोकों में प्रत्येक हजार का पहला अक्षर गायत्री मन्त्र के ही अक्षर क्रम से प्रारंभ होता है।

रचयिता-

आदिकाव्य रामायण के रचयिता आदिकाव्य महर्षि वाल्मीकि विभिन्न प्रतिभा से सम्पन्न, देशी गुणों से मण्डल, आर्यसंधार रखनेवाले एक महानीय कवि थे। कवि के वास्तविक स्वरूप की ज्ञान आलोचकों को वाल्मीकि के दृष्टान्त से ही मिली।

1. वारा 146/2.
2. वही 1/2/15.
3. वही 2/3/32.

64
संस्कृत की काव्य-धारा रसकूल का आश्रय लेकर प्रवाहित होगी-इसका परिचय उसी समय मिला गया जब प्रेमपरायण सहचर के आकर्षक विषयों से सम्बन्ध हृदंद्र के करण निनाद को सुनकर वाल्मीकि के हृदय का शोक श्लोक के रूप में छलक पड़ा। इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश काव्य में तथा आनन्दर्विनायकायं ने अपने ग्रंथ धवन्यालोक में इस प्रकार स्वरूप किया है-

“निषादविद्वन्दज्जर्णिनोत्थ: श्लोकत्वभािथत यस्य शोकः।”

तथा

“काव्यस्यात्मा स एवारस्तःतथा चाविकेः पुराः।
क्षौधविभोगस्त्भ: शोकः श्लोकत्वभािथत।”

वाल्मीकि के काव्य की सबसे बड़ी विशिष्टता है- उसकी उदात्तता। पात्रों के चित्रण में, प्रसंगों के वर्णन में, प्रकृति के चित्रण में तथा सीन्द्रों की स्पष्टि में सर्वत्र उदात्तता स्वाभाविक रूप से विराजमान है। वाल्मीकि के काव्य-मन्दिर की पूर्णस्थली है- श्रीराम तथा जानकी का पावन चित्र। राम शोभन गुणों के पावन पुज़्ज हैं। श्रीरामचर्य का नाम श्रवण करते ही प्रजावत्सल नरपति, आजारी पुत्र, स्नेही भाता, पिपियस्त्र मित्रों के सहयोग संभु का कमीय चित्र हमारे मानस पटल पर अक्षंभह हो जाता है। जनकनन्दनी सीता का नाम उभरी हमारे श्रवण की स्वाभिकता बनाता है, त्योहार हमारे लोकों के समक्ष अलोकसामान्य भलिप्रवत की संजुल मृदा बूलने लगती है। रामायण में बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड, उत्तरकाण्ड वे सात काण्ड हैं।

रामायण में आर्थ्यानः

1. रघुवंश
2. धवन्यालोक - 1/5
रामायण में राम कथा के साथ ही अनेक रोमांचक आलोचनात्मक भी सन्निहित हैं।
इन आलोचनाओं का समन्वय विशेषत: बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में किया गया है;
जिनका वर्णन इस प्रकार है-

- राजा सगर के पुत्रों की उत्पत्ति तथा अशोकेश यज्ञ का आयोजन
- समुद्रमन्यन और चतुर्वेद रचनों की प्राप्ति
- त्रिशंकु के यज्ञ की तैयारी एवं उन्हें शाप
- मनुका द्वारा विभाविन्त्र का तपोभंगा
- हुकोशादि की उत्पत्ति एवं राक्षस-विस्तार
- राजा नूग की शाप
- यमाली को अपने पुत्र से नवयोवन प्राप्ति
- शम्भूक-वध
- बुध एवं इला से पुत्रवा की उत्पत्ति
- गंगावतरण

रामायण का महत्त्व:

ध्यान जाता है कि रामायण संस्कृत-वाङ्मय का आदिकाःपक बनाये के साथ-साथ महाकाव्य के सभी लक्षणों से युक्त है। इसमें सर्ग-बद्धता, विशेष तिथि, उद्दाहरण, प्रकृति, घटनाओं का वैचित्र्यपूर्ण विवाह तथा भाषा का सौंदर्य, अत्यन्त रमणीय है। इसकी भाषाशैली, विचारों की उत्कृष्टता
एवं रामीय दृश्यों के चित्रण के कारण नैसर्गिक शैली के काव्यों में रामायण की प्रथम स्थान प्राप्त है।

प्रत्येक साहित्य में वे ही ग्रन्थ महत्व की दृष्टि से सार्वजनिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनिन होते हैं जिनमें जीवन के शाश्वत गूंथों का निरूपण होता है। रामायण के स्थायी प्रभाव एवं लोकप्रियता में वे ही प्रमुख हेतु हैं। जीवन को ओजस्वी तथा उदात्त बनाने के लिए जिन आदर्शों को रामायण में चित्रित किया गया है; वे समग्र भारतीय के लिए मुग्धा औदार्य की प्रेरणा देते हैं। इत्यादि रामायण को ‘शाश्वतकाव्य’ के स्तर में वेश्या जाता है।

जहाँ तक काव्य के प्राणपूर्व रस (Sentiment) का प्रश्न है ध्वन्यालोककार आनंददर्शन ने ‘कहर’ को ही रामायण का मुख्य रस स्वीकार किया है। रामायण का प्रारम्भ श्रद्धालु धर्म की कार्यनिष्ठा घटना से होता है तथा श्रीराम के सामने सीता के पातल-प्रवेश स्वरूप अन्तर्धान होने के कारण अन्त भी कहरणस से ही होता है:-

“रामायणे हि कहरों रसः स्वयमाधविकावना
सूचितं: ‘शोकः शोकृक्तमागतः’ इत्येवं वादिना।
निवृद्धश्च स एवं सीतात्वमाण्डल वियोगः
पर्यन्तमेव स्वभ्र प्रक्रिया-भुस्वरचयताता॥”

रामायण में सात छन्द, नौ रस तथा सभी अलंकार और गुण है--

“रसे भूमंगः कहरणहास्यरुद्रज्ञानानके।।
विरादविभी रसेयुक्तः काव्यमेतमायताम्।।”

ध्यात्मव है कि रामायण भारतीय फरमारा का ऐतिहासिक ग्रन्थ होते हुए भी काव्यमंगल की महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति है। इसकी महत्वी ख्याति, उद्कृष्ट काव्यता एवं धार्मिक-सांस्कृतिक परिवेश के कारण है। रचनाकाल से ही इसे असाधारण यथा प्राप्त है। स्वयं महर्षि वाल्मीकि ने इसके बारे में भविष्यवाणी की है

1. ध्वन्याना - 45.
2. वास्कर - 149.
कि जब तक भूतल पर पर्यंत और नदियाँ स्थित है, तब तक रामायण की कथा संसार में प्रचलित रहेगी:—

“वाक्तशास्त्रिन्तिर गिरवः सरिदश सहीतले।
तावद्व रामायणकथा लोकेषु प्रचरिण्यति।”

वाल्मीकि रामायण के प्रारंभ में ही देवर्षि नारद महर्षि वाल्मीकि को श्रीराम के चरित पर काय्य लिखने की प्रेरणा देते हुए दर्शिनी हैं। ऋषि वाल्मीकि प्रारम्भिक चार श्लोकों में देवर्षि नारद से सोलह प्रश्न करते हैं, जो चौरानवें श्लोकों में नारद वाल्मीकि ऋषि के प्रश्नों के उत्तरस्वरूप संसार के हित-साधनार्थ, मूलरामायण नामक रामचरित का सक्षिप्त वर्णन करते हैं। यह मूल रामायण वातन में आदिकाव्य का मूलभूत है तथा यह देवर्षि नारद द्वारा कथित है। देवर्षि नारद ने जिस रामचरित का मूलरामायण में संक्षिप्त रूप से वर्णन किया है, उसका सृष्टिनक्ता ब्रह्मा की प्रेरणा तथा वर्णन के प्रभाव से ऋषिवर वाल्मीकि ने विस्तृत वर्णन किया है।

वाल्मीकि रामायण में देवर्षि नारद के उपदेश, प्रेरक, कथावाचक इत्यादि रूपों के दर्शन होते हैं जिनका वर्णन इस प्रकार हैः—

उपदेश नारद

सनकादि ऋषियों को उपदेश—

वाल्मीकि रामायण के महाभाष्य भाग में देवर्षि नारद उपदेशक के रूप में दृष्टिगत होते हैं। महाप्राय नारद ब्रह्मदेव के चार अग्रज पुजों (सनक, सनन्दन, सनातन, सनकुमार) को रामायण काय्य का उपदेश देकर रामकथा श्रवण का महाभाष्य गुणात हैं, सनकादि ऋषि अपने अनुज नारद को सर्वज्ञ जानते हुए उनके समक्ष अपनी ज्ञान प्रिनसा रखते हैं।

सनकादि ऋषियों द्वारा उचित सम्मान प्राप्त करके देवर्षि नारद उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए उन्हें हरि के स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए उपदेश देते हैं। देवर्षि नारद उन्हें भगवान श्रीराम के पत्रिक चरित्र को बताने वाले

1. वारसो—1/2/37.
रामकथा का महात्म्य श्रवण कराते हुए कहते हैं कि भगवान की महिमा को जानने के लिए माह, कालिक, चैत्र मास के शुरूत पक्ष में रामायण की अमृतमयी कथा का श्रवण करना चाहिए। इस संदर्भ में देवर्षि नारद सनत्कुमारों को गौतम ऋषि के शाप से राक्षस-श्रीर को प्राप्त हुए सौवस नामक ब्राह्मण की रामायण कथा के श्रवण से मुक्ति की कथा सुनाते हैं।

“गौतम शापत: प्राप्त: सूदासो राक्षसी तनुम्।
रामायण कथा प्रभावेन विपुलक्तः प्राप्तवानसि।”

देवर्षि नारद उन्हें रामायण की महिमा बताते हुए कहते हैं कि रामायण के नाम का स्मरण करने से ही मुनियों को महाभाष्यों से भक्ति हो जाता है तथा परमगति को प्राप्त करने भगवान विष्णु के लोक का जाता है। जो मुनियों सदा भक्तिबाह रामायण कथा को पढ़ते और सुनते हैं उन्हें गुज्जरन्नां अपेक्षा सौ गुना पुण्यफल प्राप्त होता है।

“रामायणोति यन्त्रान सकृद्धिपुष्यते यथा।
तद्विन पा० परिवर्षः विपुलुको स गच्छति।।
ये पठनित सवास्क्ष्यानां भक्त्या श्रुणवन्ति ये नराः।
गुज्जरन्नां हृदण्डमुण्डः तेषां संजायते फलम्।”

देवर्षि नारद द्वारा सूदास राक्षस की रामायण श्रवण से मुक्ति की कथा सुनकर भी सनत्कुमार को सत्योत्स होता तथा वे नारद मुनि से रामायण विषयक बार्ता सुनने की और भी ईश्वर प्रकट करते हैं; तब देवर्षि उनकी नारद श्रीराम भक्ति की प्रशंसा करते हुए उन्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाते हैं, जिसमें द्वार वंश में उपन्यास मुक्ति नामक चन्द्रवंशी धर्मात्मा राजा तथा उसकी पत्नी सत्यवती नामी पत्नी की श्रीराम भक्ति तथा रामायण के अनुष्ठानों से उनके पूर्वजों के प्रायश्चित करने की कथा श्रवण करते हैं।

1. ख़ासो - माभागो - 2/24.
2. वही - माभागो - 2/72/73.

69
इसके अनतर देवर्षि नाराद सनत्कुमार को कलिक नामक व्याध की कथा सुनाते हैं, जो मदोनात होकर चन में तपस्या कर रहे उत्तरकु मुनि को अपने तलवार से गारे को उचात होता है; किन्तु मुनिवर के सीम्य उपदेश से उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है तथा जब वह उससे अपने पापों के प्रायोगिक का उपाय पूछता है तब उत्तरकु मुनि उसे चेतना के शृंखलाप्रकाश में रामायण की नवाल्मुक्त कथा करने को कहते हैं जिसके श्रवण से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है :-

"नवाल्मुक्त: किल श्रोत्वः भक्तिभावनेन सादरम।
यत्य श्रवणमवर्तेः सर्वायः: प्रमुख्यते।"

इस प्रकार सुनासी ब्रह्मण, राजा सम्बन्धित सम्व तथा कलिक व्याध की कथा श्रवण के माध्यम से रामायण का महाअत्य सुनाकर देवर्षि नाराद सभी ऋषियों को श्रीरामकथा का पारायण करने का परमपर्वत देते हैं। सनत्कुमार को पूछते पर उन्हें कथा पारायण की सम्पूर्ण विची भी बताते हैं। देवर्षि नाराद से रामायण कथा को सुनकर उसका पारायण करने सनकार्य ऋषियों को तत्काल परमान्त की प्राप्ति होती है। इस प्रकार देवर्षि नाराद अपने कथात्मक उपदेश से हरिभवति का प्रचार करते हुए जगत को पवित्र बनाते हैं।

प्रेरणाप्रदाता नाराद

वाल्मीकि रामायण के बलकाण्ड के प्रारंभिक श्लोकों में देवर्षि नाराद वाल्मीकि ऋषि को भगवान श्रीराम को गुणों को व्यावहारिक करने रामायण महाकाण्ड लिखने की प्रेरणा देते हुए वर्तनीकृत हैं। आदिकायण रामायण के प्रथम श्लोक में ही वाल्मीकि ऋषि नाराद मुनि से प्रश्न पूछते हुए उन्हें तपस्या और स्वाधीनता मे लगे हुए विभवों में सर्वश्रेष्ठ मुनिवर की संज्ञा देते हैं तथा उनके समक्ष अपनी जिज्ञासा रखते हुए कहते हैं कि सदनारो, विभूति, सामाजिकाली, बुद्धि, भगवद्गीता को सम्पूर्ण बनाते हुए कहते हैं।

1. वायू के मान्यता - 4/36.
नहीं करने वाला तथा संग्राम में कुपित होने पर जिससे देवता भी उरते हों ऐसा पुर्ण कौन है?

“को न्यस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।

कर्य विभ्यति देवाश्च जातरोपस्य संयुगो।”

महार्षि के यथार्थों को सुनकर तीनों लोकों का ज्ञान रखने वाले देवर्थि नारद
उनहें भगवान् श्रीराम के चरित्र का संक्षिप्त वर्णन करते हैं। देवर्थि नारद महार्षि
वाल्मीकि को भगवान् श्रीराम के कान्तिमान, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान,
नीतिज्ञ, शोभायमान, शालुसिंहरक इत्यादि गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं :-

“इद्याकुवंशप्रभो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महादीयो दृढितमान् धृतिमान् वर्षी।
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मि श्रीमाण्तिेनिवर्धिणः।
विपुलांसो महाश्रावः कम्बुश्रीवो महाहृः।
धर्मश्रावः सत्यसंध्वश्रावः प्रजानां च हिंसे रतः।
यशस्विः ज्ञानस्मप्पना: शुचिवर्षश्च: समाधिमान।”

भगवान् श्रीराम के चारित्रक गुणों का वर्णन करने के पश्चात् देवर्थि नारद
महार्षि वाल्मीकि को श्रीराम का संक्षिप्त जीवन वृत्त बताते हुए कहते हैं की दशरथ
एवं कौशल्या के पुत्र श्रीराम को उनके पिता युधिष्ठिर पद पर अधिषिक्त करना
चाहते हैं; किन्तु उनकी दूसरी पत्नी कौशिकी द्वारा वरदान में श्रीराम को बनवास
tथा भरत को राजगदग सांगने पर श्रीराम का राज्य निर्वासन होता है। सुभिरावन्दन
लक्ष्मण तथा जनक नन्दनी सीता वन को जाने वाले श्रीराम का अनुसरण करते हैं
श्रृंवेशपुर में गज्जा तट पर निषादाज को नाव में बैठकर गज्जा पार करके गज्जा

1. वासी - 1/1/2-4.
2. वासी - 1/1/8-12.
के दूसरे तत्त्व पर भाराज सुनि के आराम में जाते हैं तथा उन मुनिक की आजा से वे चित्रकूट पर्वत पर पशुवती में कुटिया बनाकर निवास करते हैं। श्रीराम के वियोग में उनके पिता दशरथ अपने प्राण त्याग देते हैं।

“चित्रकूट गते रामे पुराणोकालुस्तवा।
राजा दशरथ: स्वर्गजगाम विलसय वृहस्मु॥”

पिता के स्वर्गानन्द के पशुकाल कविता स्वस्ती के निर्देशानुसार निवास होने तथा अंवर शंखन का खुलासा जाता है। भरत अपने पिता का अंतिम संस्कार करके भारत राम को प्रसन्न करने के लिए वन को प्रस्तुत करते हैं। भगवानु श्रीराम से राजपद सम्बलने की प्रार्थना करने पर वे भरत को पिता के वचन का मान रखते हुए अपनी चरणपात्रा तेजद कर अत्यधिक लोटने का आदेश देते हैं। इसके पशुकाल श्रीराम दश्यकारण में प्रवेश करते हैं तथा वहाँ विराट नामक राक्षस को मारकर शरभज्ञ, सतीश तथा अगस्त्य आदि औषधि-मुनियों के दर्शन करते हैं तथा अगस्त्य मुनि से एन्खनुम, दो तूणी जिन्हें बाण भी कब्र नहीं होते थे तथा एक खज्ज प्राप्त करते हैं। वन में श्रीराम रावण की विहार शूर्पणखा को उसकी उपव्यक्तित्व पर नाक-कान से विशिष्ट कर देते हैं। शूर्पणखा के कहने से खर, दूषण, श्रिबोध इत्यादि अवर श्रीराम पर आक्रमण करते हैं तथा उनके हाथ से गृहु प्राप्त होते हैं। अपने वन्धुजनों का वध तथा रावण मारक को मायाबी मृग बनाकर श्रीराम एवं लक्ष्मण को आराम से दूर हटाकर श्रीराम की भती सीता का अपहरण कर लेता है। पुराण विमान में सीता के ले जाते जाए जहाँ नामक गीड उन्हें छुड़ाने का प्रयास करता है; किन्तु रावण द्वारा मारा जाता है। सीता को खोजते हुए श्रीराम की बेटी फंपसरोवर के निकट जहाँ नहीं तो जहाँ। उसके संकेत से श्रीराम हनुमान एवं सुदीर्घादि से मिलते हैं। सुदीर्घ श्रीराम से मैत्री करके उनकी सहायता का वचन देता है इसके बाद वह सुदीर्घ उसका कङ्क देने वाले बाली को मारते हैं तथा सुदीर्घ को किंपिक्ष्य का राज पुनः प्राप्त होता है।

1. वाराण - 1/1/32.
सुषीव के आदेश पर हनुमान से योजन विस्तारवाले समुद्र को पार करके रावण की नगरी लंका में जाते हैं तथा वहाँ अशोकवासिका में देवी सीता को भगवान् श्रीराम का सेव युकार तथा उनसे सदेश प्राप्त करके लंकाद्वार करने हुए श्रीराम के पास वापिस लौटकर उन्हें सीता का समाचार दुनाते हैं। नल नील झर समुद्र पर पुल बनाकर श्रीराम अपनी बानर-भालूओं की सेना के साथ लंका पर आक्रमण करके राजसराज रावण का वध करके उसके अनुज भ्राता विभीषण को लंका के राजधानीश्चमन पर बिठाते हैं; वहाँ भरी सभा में श्रीराम के समर्पण वचन सुनकर साध्वी सीता अभिन में प्रवेश कर लेती हैं। अभिन झर उसकी पवित्रता का प्रभाव मिलने पर श्रीराम सीता लक्षमण एवं हनुमानादि को साथ लेकर अपूर्व नगरी पहुँचते हैं, वहाँ उनका भय स्वामत होता है। श्रीराम का राजमितल होता है।

देवर्षि नारद वाल्मीकि ऋषिक से कहते हैं रामायण में लोक प्रसन्न, सुखी, संतुष्ट, पुष्ट, धार्मिक तथा रोग व्याधी से मुक्त हैं तथा वहाँ दुर्भिक्ष का भय नहीं है न:-

“प्रहस्तमुदितो लोकसत्प्त: पुष्ट: सुधार्मिकः।
निरामयो हस्तोग्राघ दुर्भिक्षभयवर्जितः॥”

इस प्रकार देवर्षि नारद वाल्मीकि ऋषिक को संकृतिन राम चरित सुनकर उसे विस्तृत रूप में सिखने की प्रेमण देते हैं। तथा महात्मा वाल्मीकि गुनि रघुवनविभूषण श्रीराम के चरित्र विषयक रामायण कथा का बैठी ही निर्माण करते हैं :-

“स तथा कथितं पूर्व नारदेन महात्मना। रघुवन्धार चरितं चाकार भगवानु मुनि:॥”

इस प्रकार यह सूत्र होता है कि रामायण की रचना का मूल श्रेय देवर्षि नारद को ही प्राप्त होता है, उन्होंने ही स्वरूप दोहर का प्रचार वाल्मीकि ऋषिक के समक्ष करके उन्हें रामायण महाकाव्य लिखने की प्रेमण दी।

1. वांछा - 1/1/90.
2. बही - 1/2/9.
महाभारत में देवर्षि नारद

महाभारत :

यह भारत का आर्य ग्रन्थ है। विश्व के सम्पूर्ण साहित्य में महाभारत सर्वधिक दीर्घकालिकता रचना है जिसे ‘शतसाहसी साहित्य’ कहा जाता है। भारत की राष्ट्रीय जान साहित्य के रूप में महाभारत एक ऐसा विश्व कोष है, जिसमें प्राचीन भारत की राजनीतिक, धार्मिक एवं दार्शनिक सभी प्रकार की निधि सूचक है। महाभारत ग्रन्थ में अध्यम के नाश पूर्वक, धर्म की विजय प्रदर्शित करते हुए कर्म के जिस महाभाष्य का उच्च उद्द्घोष किया गया है, वह भारतीय संस्कृति के लिए अनमोल रत्न है। यह ग्रन्थ आचार साहित्य, धर्मशास्त्र, आङ्ग्रेजी काव्य एवं प्रत्येक इतिहादिय उपाधियों से विभूषित है।

महाभारत वत्तुः: व्यास चाणि का विभाग प्रसाद है। यह विचार रत्नों का एक अग्राध महापत्व है, जिसमें गोते लगाने वाला कवि आज भी अपने काव्य को चमकृत और अलंकृत बनाने के लिए नवीन जगभागते हीरों की खोज निकालता है। जैसा कि गोविधानाथ ने कहा है:—

“व्यास सिरा निर्धियां सारं विश्वस्य भारतं वन्देः।
भूपणात्येव संज्ञा यवद्वृत्ता भारती वहति।”

महाभारत पुरातन इतिहास का अखै स्वरूप एवं विश्वकोष है। विश्वपुरुष कौटिल्य ने इतिहास का जो लक्षण बताया है कि पुराण, इतिहास, आत्मालिणका, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र मिलकर इतिहास कहलाते हैं, पूर्णत: महाभारत पर घटित होता है। इस ग्रन्थ को इतिहास बताते हुए महाभारत में कहा गया—

“इतिहासोत्सवमात्राभ्ये चतविवृद्धयः।
इतिहासव्रदीपेन मोहावरणाधिति।
लोकगर्भ गृहं कृतं यथावतु संप्रकाशितम्।”

1. महार्— आदिवर्ष
रचयिता-

आर्यकाव्य ‘महाभारत’ के प्रणेता के रूप में महर्षि वेद-व्यास को स्वीकार किया जाता है। इनका मूल नाम कृष्णदेवपाण्य था; क्योंकि इनका वर्ण कृष्ण था तथा ये यमुना के किन्नर झीप में ऋषि पराशर तथा सत्यवती की सन्तान के रूप में पैदा हुए इसलिए झीप में पैदा होने के कारण इनका नाम देवपाण रहा।

धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर इन्हें नियोग-पद्धति द्वारा उत्पन्न हुए थे। वे उनके प्रेम-बल के दाला ही नहीं थे; अपितु विगति के समय छाया के समान अनुभव करने वाले थे तथा अपने उपदेशों से उन्हें समय तथा न्यायपथ पर आदेश रहने की शिक्षा दिया करते थे। वेद को यज्ञीय वृद्धि से तकक यजु, साम एवं ध्वस, इन चतुर्विध विभागों, या सहिताओं में विभाजित करने के कारण इनका नाम ‘वेदव्यास’ पड़ा:- “विविध स्वदेश वस्मादु स तस्मादु व्यास इति स्मृत्।”

महर्षि वेदव्यास ने चारों दिशों के विन्यास के साथ-साथ अठारह पुराणों तथा महाभारत नामक ग्रन्थ की रचना की। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ ‘भगवद्गीता’ है। इसके अतिरिक्त विषु शहस्रनाम, अनुगीता, भीष्मपत्र तथा गजनन्देश के जैसे अथात्विक तथा भवितपूर्ण ग्रन्थ महाभारत से ही उद्धृत किये गये हैं। भगवद्गीता के साथ सम्मिलित रूप में इन्हीं पाँचों ग्रन्थों का पतनरत्न के नाम से जाना जाता है। अपने अनुयाय एवं अभिनव गुणों के कारण ही संकृत-वाद्य में महाभारत पृष्ठभेद मानक उपनाम हो विश्वास है। भारतीय राजनीति का अत्यत ललित बर्णन करने वाली ‘विदुरनीति’ महर्षि वेदव्यास विचित्र महाभारत का ही एक अंश है। इस प्रकार ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक, आदि अनेक दृष्टियों से महाभारत एक गौरवपूर्ण ग्रन्थ है:-

“धन्यं यशश्वमायुर्यं पुण्यं वेदव्यास सम्मितम।
कृष्णदेवपाणनोनोत्तर पुराणं वहवाविन।”

1. महार- 1/64/30.
इस महाभारत ग्रन्थ की रचना व्यास ऋषि ने तीन वर्षों के सतत परिश्रम से पूर्ण की:-

“त्रिभविष्य सदोस्थायी कृष्णाह्पीपायनो मुनि।
महाभारतमाध्यायं कृतवनिन्दसः।”

तथा— “त्रिभविष्यरिद्ध पूर्ण कृष्णाह्पीपायनः प्रभु।
अविवर्त भारतं चेतं चकार भगवानु मुनि।”

व्यास ऋषि ने महाभारत का अध्ययन अपने पाँच शिष्यों सुमन्तु, जैमिनी, पैल, शुक्केव, तथा वैशम्पायन को कराया उन शिष्यों ने महाभारत की पृथक-पृथक सहिताएँ प्रकाशित की:

“वेदानहयायायामास महाभारतपः भर्मानु।
प्रभुविभीष्ठो वरवो वैशम्पायनमेव च।
सहितास्तेत: पृथकः भारतस्य प्रकाशिता।”

तथा— “सुमन्तु जैमिनि वैशम्पायन पैल-शुक सूर्यभाष्य भारत महाभारत
dर्माचार्यः।”

महाभारत शब्द की व्युत्पत्ति:

महार्षि पाणिनि ने ‘महाभारत’ शब्द की वैयाकरणिक व्युत्पत्ति सिद्ध की है—

“महान् वीहि - अग्राणहमुन्ति,
पालाजाबाल - भारतहेलिहतरवप्रवृत्तेनु।”

इसके अनुसार भारत शब्द में महानु शब्द लगाने पर समास बनता है। महाभारत के टीकाकरों ने इस शब्द का अर्थ किया है— “भारता: योधारो
वसिन्न युद्धे तद् भारतम्” अर्थात् जिस युद्ध को भारत यथी योधा लड़े हों, वह
‘भारत’ कहलाया। क्योंकि यह भारतों का महानु युद्ध था, इसलिए यह महाभारत

1. महा - 1/52/32.
2.अष्टा - 6/2/38.
कहलाया। महाभारत अनुक्रमाणिका अध्याय में महाभारत शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

“चतुर्थम्: सरहस्येभ्यो वेदेभ्यो हाधिकं यव।
तवायप्रभृति लोकेषभिः महाभारतमुच्यते॥
महत्त्वे च गुरुत्वे च धियमाणो यतोधिकम्।
महात्वचाच्च भारतवचाच्च महाभारतमुच्यते॥
निरुक्तमयि यो वेद सर्वपापेः प्रमुच्यते॥”

अर्थात् क्योंकि वह महाभारत में और भार में उपलब्ध सहित चारों वेदों से अधिक है, इसलिए लोक में इसे महाभारत कहते हैं। महाभारता और भार अधिक होने के कारण इसे महाभारत कहते हैं, जो इस निष्कर्ष को जानता है, वह सब पांडों से मुक्त हो जाता है।

महाभारत का एकलक्ष्यलोकात्मक वृद्धसंवरूप एकांक में ही प्राप्त नहीं हुआ है। प्रारंभ में इस का स्वरूप संक्षिप्त एवं लघु था। समय—समय पर इसमें परिवर्तन एवं परिवर्धन होते रहे और क्रमशः विस्तृत होते—होते इस ग्रन्थ ने बृहतकाय रूप धारण कर लिया। भारतीय एवं पाश्चात्य विज्ञान इस ग्रन्थ के विकास क्रम के तीन सोपान स्थापित करते हैं—जय, भारत, और महाभारत। समय की निर्मलता में क्रमशः तीन वर्तमान और तीन ही प्रकार के श्रोता समूह ने यह ग्रन्थ जय से महाभारत तक की अवस्था में पहुँच गया।

जय— महाभारत का यह प्रथम मौलिक रूप जय नाम से विस्थापन् था। व्यास ने यह कथा अपने शिष्य वैशम्पायन को सुनाई।

“जयोनामेतिहासोऽवेशयं श्रोतव्यो विज्ञीयमिष्ठु॥
“जयोनामेतिहासोऽवेशयं श्रोतव्यो मोक्षमिष्ठु॥”

1. महाभारतानुसार 1/1/272—274.
3. वही— 18/5/50.

77
महाभारत के अनुसार स्वयं वेद व्यास कहते हैं कि आठ सहस्र आठ सी श्लोक या तो में जानता हूँ या शुक जानता है, संजय उन्हें जानता है या नहीं, यह निश्चित नही है–

“अष्टो श्लोकसहवाणि, अष्टो श्लोकशतानि च।
अह वेदिः शुको वेदिः, संजयो वेदिः वा न वा।”

इसके अनुसार आरम्भ में महाभारत केवल 8800 श्लोकों तक सीमित था और इसका नाम जय था–“जयो नामेतिहासोऽवतं व्यासेन मुनिना कृत।”

तथा–

“नारायण नमस्कृत्य नरे चैव नरोत्तमस्।
देवी सरस्वती चैव ततो जयमुकीर्येत।”

भारत— महाभारत ग्रन्थ के विकासक्रम का यह दूसरा चरण है। अर्जुन के प्रथम जनेजय ने जो सर्पयज किया था, उसमें वैश्यवन ऋषि ने इस कथा को सुनाया। इस चरण में भी इस कथा प्रमुख विषय युद्ध वर्ण ही था। उपायणां रहित भारत ग्रन्थ की श्लोक संख्या 24000 है। उपायणों को मिलने पर यह एक लक्ष श्लोकांक रचना अर्थात ‘शतसाहस्रसहिता’ बनती है:-

“शतसहस्रं तु श्लोकानां पूण्यकर्मणाम।
उपायणाः सह ज्ञेयमाध्य भारतमुत्तमम्।
चतुर्विश्वासिनाः चक्रेऽ भारतसहितम।
उपायणेवर्णीम तस्माद् भारतं प्रोचये बुध्ये।”

महाभारत—सर्पयज में लोमहर्षण के पुत्र सौति ने वैश्यवन ऋषि से भारत कथा सुनी इसी सौति ने शौनक ऋषि के यज्ञ में ऋषियों के आग्रह पर यह कथा सुनाई। इस अवस्था में विभिन्न प्रजनोत्तरों, समाधानों तथा आश्वानों के जुड़ जाने के कारण इस ग्रन्थ के कलेवर में अत्यधिक वृद्धि हुई तथा एक लाख श्लोकों वाले महाभारत की रचना हुई–“एक शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रतिलिप्तम्।”

1. महाभारत 1/1/101,102.
इस प्रकार क्रिया श्री कृष्णदेशपाणि ने संक्षेप (भारत) और विस्तार (महाभारत) दोनों प्रकार से ही इतिहास का निर्माण किया—
“विस्तीर्णमहज्जनमूर्ति: संक्षिप्त्य चाचवलीत्।
इति हि विदुष्ण लोके समासव्याय धारणम्।”

महाभारत का महात्म्य:

विश्वसाहित्य एवं भारतीयवाड़मय में महाभारत ग्रन्थ का अतुलनीय स्थान है।
आकार की तुलिते से तो यह प्राचीन विश्व का बुद्धतम ग्रन्थ है ही, ज्ञानविज्ञान में
भी इससे बढ़कर अन्य ग्रन्थ नहीं है। इसमें वेद रहस्य वेदांत उपनिषदें का
प्रतिपादन है। इतिहास-पुराण भूत, भविष्य, वर्तमान का वर्णन है, धर्मों-वर्णों
आश्रमों का वर्णन है। न्याय, शिक्षा चिकित्सा तीर्थ, भूगोल, युद्धविज्ञान, नीति,
लोकव्यवहार-सभी विषयों का विस्तृत वर्णन है। श्रीमद्भगवतमीता इस महाभारत
का अंश है जिसके विषय में कहा गया है— “भीमा सुगीता कर्तव्या किमन्येः:
शास्त्रविस्तरम्।” महाभारत ऐसा विशाल महासागर है जिसमें धर्मसिद्धांतोंका
सम्बन्ध असंख्य शासन सरिताएं मिलकर एक प्राण होती हैं इस ग्रन्थ के बारे में यह
उद्वित सत्य प्रमाणित है कि—

“धर्मं चार्यं कनेच नोक्षे च भरतर्थभ।
यदिवहार्म सदन्यम यन्त्रहर्सति न ततू कविचित।”

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और नोक्षा के विषय में जो नहीं इस ग्रन्थ में हैं,
वहीं अन्य भी है, जो इसमें नहीं वह कहीं भी नहीं है।

ग्रन्थ परिचय—

महाभारत के खण्डों को पर्व कहते हैं ये संस्कृत में अठारह हैं। प्रत्येक पर्व
स्वयं में एक ग्रन्थ है—

1. महा- 1/62/53.

79
<table>
<thead>
<tr>
<th>नं</th>
<th>पार्व</th>
<th>अध्याय</th>
<th>श्लोक</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>1</td>
<td>आदि पार्व</td>
<td>227</td>
<td>8884</td>
</tr>
<tr>
<td>2</td>
<td>सभा पार्व</td>
<td>78</td>
<td>2511</td>
</tr>
<tr>
<td>3</td>
<td>वन पार्व</td>
<td>269</td>
<td>11664</td>
</tr>
<tr>
<td>4</td>
<td>विराट</td>
<td>67</td>
<td>2050</td>
</tr>
<tr>
<td>5</td>
<td>उद्योग</td>
<td>186</td>
<td>6698</td>
</tr>
<tr>
<td>6</td>
<td>भीष्म</td>
<td>117</td>
<td>5884</td>
</tr>
<tr>
<td>7</td>
<td>द्रोण</td>
<td>170</td>
<td>8909</td>
</tr>
<tr>
<td>8</td>
<td>कर्ण</td>
<td>69</td>
<td>4964</td>
</tr>
<tr>
<td>9</td>
<td>शत्रु</td>
<td>59</td>
<td>3220</td>
</tr>
<tr>
<td>10</td>
<td>सौत्तिक</td>
<td>18</td>
<td>870</td>
</tr>
<tr>
<td>11</td>
<td>स्त्री</td>
<td>27</td>
<td>775</td>
</tr>
<tr>
<td>12</td>
<td>शाहीत</td>
<td>339</td>
<td>14732</td>
</tr>
<tr>
<td>13</td>
<td>अनुशासन</td>
<td>146</td>
<td>8000</td>
</tr>
<tr>
<td>14</td>
<td>आश्वमेधिक</td>
<td>103</td>
<td>3320</td>
</tr>
<tr>
<td>15</td>
<td>आश्रमवासिक</td>
<td>42</td>
<td>1506</td>
</tr>
<tr>
<td>16</td>
<td>मौसल</td>
<td>8</td>
<td>320</td>
</tr>
<tr>
<td>17</td>
<td>महाप्रसादिनिक</td>
<td>3</td>
<td>123</td>
</tr>
<tr>
<td>18</td>
<td>स्वर्गारोहण</td>
<td>5</td>
<td>209</td>
</tr>
</tbody>
</table>

महाभारत के आदिपार्व में चन्द्रदीपक का विस्तृत इतिहास तथा कौशल की उत्पत्ति का वर्णन है। सभा पार्व में वूकली, वन पार्व में पाण्डवों का वनवास, विराटपार्व में पाण्डवों का अजातवास, उद्योगपार्व में श्री कृष्ण का दूत बनकर कौशल की सभा में जाना तथा शाहीत उद्योग करना, भीष्मपार्व में अर्जुन की गीता का उपदेश, युधिष्ठिर, भीष्म का शरणया पर पढ़ना, द्रोणपार्व में अभिमन्यु वध, द्रोण युद्ध एवं वध सौभद्रिकपार्व में पाण्डवों के सोये हुए पुजनों का अवश्यवाया द्वारा
रात्रि में वध, स्त्रीपर्व ने स्त्रियों का विलाप, शान्ति पर्व में भीष्म पितामह द्वारा युधिष्ठिर को मोक्षधर्म एवं राजधामशेष, अनुशासनपर्व में धर्म, नीति की कथा, आश्रमवासिपर्व में युधिष्ठिर का अश्रमधेर यज्ञ करना, आश्रमवासिपर्व में धृतराष्ट्र-गान्धिरी आदि का वानप्रथाश्रम प्रवेश, गोसलपर्व में यादवों का मूर्त द्वारा विनाश, महाप्रस्थानिकपर्व में पाण्डवों की हिमालय यात्रा तथा स्वर्गरोहणपर्व में पाण्डवों का स्वर्ग में जाना वर्णित है।

महाभारत में अनेक रोचक तथा शिलाप्रद उपास्यानु हैं जिनमें मुख्य हैं- शकुन्तलोपास्यानु, नासोपास्यानु, रामोपास्यानु, तिथि-उपास्यानु, श्रीकृष्ण उपास्यानु, नलोपास्यानु, परशुराम-उपास्यानु, सोमक-जन्म-उपास्यानु।

महाभारत की कथास्तु नीतिप्रद, रोमांचक, काव्य सौन्दर्य्य से ओत-प्रोत तथा सूक्तित वैदिक और पाण्डवों की राज्य लालसा से सम्बद्ध है। अत्यंत ब्रह्मचार्य इस महाकाव्य में पाठकों की संख्या भी तदनुसृप वृद्धि है। श्रीकृष्ण तथा देवर्षि नारद को छोड़कर महाभारत के सभी पाठ मान्य नहीं हैं। नृता पाठकों में युधिष्ठिरादि पाँच नारद, दुर्गोधानादि सो कौरव, श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र, गांधिरी, कुली, दोपेरी इत्यादि हैं तथा धुषद्राधिक, दग्ध, तात्त्विक, शिशुपाल, ष्ट्रिक एवं देवर्षि नारद इत्यादि गीण पाठ हैं। गीण पाठ होते हुए भी देवर्षि नारद के दर्शन सम्पूर्ण महाभारत में यज्ञ-तत्त्र प्राप्त होते हैं।

देवर्षि नारद का बाद्ध स्वरूप-

प्रस्तुत ग्रन्थ में देवर्षि नारद बाद्ध स्वरूप में वीणाधारी, स्तवकमलाधारी, नस्तकपर त्रिपुणद लगाये, पर सर छिद्र बाधे, पैरों में खड़ा रहने, बीत वक्ता एवं रहस्य गाला धारण किए हुए तथा नारायण नाम का जाप करते हुए दृष्टिगोचर होते है। देवर्षि नारद के बाद्ध रूप का वर्णन शाल्य पर्व में इस प्रकार मिलता है- महातपवी नारद जटामण्डल से मण्डत हो सुनहरा चीर धारण किए हुए कमण्डल, सोने का दण्ड तथा सुलकायक शब्द करने वाली कच्ची नामक मनोम वीणा धारण किए हुए थे।
"जटामण्डलसंवीत: स्वर्णचीरो महात्मा।
हेमदण्डरो राजान् कमण्डलुधरस्तथा।
कच्छप्पी सुखश्वासं तां गृहा वीरां मनोरमाम॥"

महाभारत के कथानक अनुसार देवर्षि नारद का जन्म ब्रह्मा के मानस पुत्र दक्ष के शाप के कारण कश्यप मुनि की संतान के रूप में हुआ। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में देवर्षि नारद के आन्तरिक गुणों का उल्लेख भी प्राप्त होता है- वे नृत्य-गीत में कुशल, देवताओं तथा ब्राह्मणों से सम्बन्धित, कलह कराने वाले तथा सवैया कलह के प्रेमी हैं।

"नृत्ये गीते च कुशलो देवबाह्यपूजित:।
प्रकर्त्ता कलहानां च नित्यं च कलहप्रिय:॥"

इसके अतिरिक्त महाभारत के बनपथ के ‘तीर्थयात्रापर्व’ में देवर्षि नारद को अभिन ने समान दैवीयमन्त्र तेज वाला बताया गया है-

"दैवीयमन्त्रि श्रीमान ब्राह्मण हुतारिशिष्मिवालम्॥"

वे वेद, उपनिषद्, इतिहास, पुराण, कल्य एवं पूर्वोत्तर भीमांसा के पारदर्शी विद्वान, धर्ममंगल, प्रगल्भकता, नीलि-कुशल और देवताओं के पूजनीय हैं। महाभारत के आधार देवर्षि नारद के आन्तरिक स्वरूप (गुणों) का वर्णन इस प्रकार है-

उपदेश्ता नारद

महाभारत में देवर्षि नारद का उपदेश्ता रूप स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। स्वरूपस्वत वाराजुः देवर्षि नारद कहीं राजाओं को उपदेश देते हैं, तो कहीं देवताओं को, कहीं भक्तों को तो अन्य त्रासियों-मुनियों को उपदेश देते हुए दर्शनीय हैं। इस ग्रन्थ में विभिन्न पाठों को देवर्षि नारद द्वारा मिले उपदेशों के विषय में वर्णन कुछ इस प्रकार से मिलता है--

1. महार - 9/54/18,19.
2. वही - 9/54/20.

82
1. देवताओं को उपदेश -

महाभारत ग्रन्थ में देवर्षि नारद कहीं भगवान् श्रीकृष्ण को सुव्यवस्थित तथा पश्चात रहित राज कार्य करने का अन्यत्र देवराज इत्यादि के ब्राह्मणों का आदर करने का उपदेश देते हुए दर्शनीय हैं जिसका वर्णन सम्पलित प्रकार से है।

(क) भगवान् श्री कृष्ण का उपदेश -

महाभारत के शास्त्रियय में देवर्षि नारद भगवान् श्रीकृष्ण को उपदेश देते हुए दर्शनीय हैं। युधिष्ठिर पितामह भीम से सबके चिंता को बांट करने की युक्ति पूछते हैं तो भीम उस विषय में श्रीकृष्ण तथा देवर्षि नारद का संवाद सुनते हैं जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण देवर्षि नारद से अपनी बन्धु-बान्धवों से सम्बन्धित चिंता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि सगे सम्बन्धियों से राज्यव्यवस्था के कारण पश्चातपूर्ण व्यवहार हो जाने पर उनके बाद-विवाद से बचने का उपाय कर्या है: -

"अन्यायासु मुनि शस्त्र भूत विद्यमान कथमुक्तम्। येनेपिन्धुरे जिनका परिमलायातुमूल्याय।"

देवर्षि नारद श्रीकृष्ण की चिंता का निवारण करते हुए उन्हें उचित उपदेश देते हुए कहते हैं कि सामर्थ्य के अनुसार सवा अनन्द वस्ती, तितिक्षा, सरलता, कोमलता और यथा योग दृष्टे की पूजा, ये सब शस्त्र हैं; जिनकी सहायता से तथा नीठे वचन से, लघु और कठवादी जाति ने पुरुषों के कुटिल अभिप्राय, कुवाचय और दुष्ट संकल्पों को नष्ट किया जाता है।

"शक्त्विंद्रधारान सततां तितिक्षार्जुनावधारायम्।
यथार्थप्रतिपुजा च शस्त्ररसोलकायायम्।
ज्ञातीनां वस्तुमुक्तानां कटुकानि लघृनि च।
गिरा त्यं हृदयं वाचां शम्यव्यच मनासि च।"

केवल महापुरुष ही उदारों होकर इस प्रकार के बड़े कार्य भार को उठाने में समर्थ होते हैं, असहाय एवं असाध्य धर्म नहीं। बैल का उद्दालन देते हुए देवर्षि नारद श्रीकृष्ण से कहते हैं कि जिस प्रकार समस्त स्थान में तो सभी बैल बहुत-सा भार वहन कर सकते हैं लेकिन कठिन स्थान में तो दूढ़ अन्धां से युक्त

1. महान - 12/82/20.
2. वही - 12/82/21,22.
अनहवान् हि भार वहन कर सकता है। इसलिए श्रीकृष्ण को सबसे बलवान एवं सबके मुक्तिया होने के नाते, भेदभाव करने से बन्धुत्व का नाश होगा ये सम्पन्न प्रकार से जानने हुए, उनका आश्रय नाके सबके उत्साह का ही उपाय करना चाहिए। देवर्षि नारद कहते हैं कि बुद्धि, शारीरिक, इन्द्रियनिरीक्षण और धनत्वायाम के अतिरिक्त बुद्धिमान पुरुष में कोई गुण नहीं रहते इसलिए जिस कार्य से धन, यश, आयु और स्वप्न की उन्नति हो वहीं उपाय करना उचित है।

"नामन्यत्र दुर्दश्यान्तिभण्ड नान्यन्त्र नान्यन्त्र द्वारवतियविधातु।
नामन्यत्र धनसमन्तवामाणाणम: प्रातोढ़तिष्ठते।।
धनम् यशस्मायुष्यः स्वप्नोधिगावनं सदा।
जातीनामविनाशः स्यायः कृष्ण तथा कुस्त।"

इस प्रकार देवर्षि नारद के उपदेश से भगवान् श्रीकृष्ण की ज्ञातन कि विषयक चिन्ता का निवारण होता है तथा वे राजकार्य को साथ-साथ स्वसंभवत्व में संपुर्ण बनाए रखने की रीति अधिकृत से जानकर प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं।

(ख) देवराज इन्द्र को उपदेश-

महाभारत के ज्ञातिपर्व में देवर्षि नारद पुनः उपदेश को रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। नारद गुणि अन्यावृत्त गति वाली वायु की भांति सभी लोकों में भ्रमण करते हुए देवराज इन्द्र के भवन में पूछा कर आदर स्तूगार प्राप्त करते हैं। तब इन्द्र देवर्षि नारद से पूछते हैं कि तीनों लोकों में अबाध गति वाले देवर्षि ने विषय में कौन सा आश्चर्यारूढ विषय देखा है? इन्द्र के पूछने पर द्विरूपस्तम्न नारद देवराज के हृदय में ब्राह्मणों के लिए आदर भाव उत्पन्न करने थे, उन्हें महाप्राची नामक नगर में रहने वाले एक ब्राह्मण की कथा सुनाते हैं। वह मर्यादा, एकाग्राचित, जितेण्य प्रारूढी अथवा पूर्वों को कार्यभार सौंप कर अपने घर आए एक अतिथि द्वारा से अवस्थित है कि इस संसार को पार जाने की आकांक्षा होने से मुझे ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई है कि संसार सागर को तरने में समय मर्यादी नौका में कहां पाऊँगा?

1. महाराष्ट्र - 12/82/26,27.
“अग्निनिन्द लोकसंताने पर्यारम्भाप्रसतः।
उत्पन्ना में मतिरथ कुलो धर्ममयः प्लवः।”

अतिथिदेव उस ब्राह्मण को नैपित तीरथ में कर्म, जान और उपासना इन तीनों मार्गों में स्थिर रहने वाले; मन, कर्म और वाणी से प्राणियों को प्रसन्न रखने वाले चकुश्रवा नामक महानाग के पास जाकर मनोवाचित्र विषय पूछने के लिए कहते हैं। वह ब्राह्मण नैमिषारण में स्थित भुजगेन्द्र के द्वार जाता है तथा नागलिनी द्वारा उसके स्वामी के घर न निहोने का समाचार सुनकर वहीं गोमती के तीर पर नागेन्द्र की प्रतिवारा में भूखा प्यासा रहकर तपस्या करने लगता है। नागराज के वापस आने पर उनकी भांति उन्हें सम्पूर्ण समाचार निवेदित करती है। धर्मपत्री की बात सुन नागराज तुरन्त ब्राह्मण के पास जाकर उनके आने का प्रयोजन सहित यूर्ष पूछते हैं। ब्राह्मण भुजगेन्द्र से पूछते हैं कि वे सूर्यदिवस का एकचक रथ चौथे हैं इसलिए उन्होंने यह वहाँ कोई आश्चर्य देखा हो तो उसे कहें। नागराज कहते हैं कि एक बार मध्यशाख काल में जब क्षत्रिय सूर्य सब लोकों को तथा रहे थे, उस समय दूसरे सूर्य के समान एक तेजस्वी पुष्प दिखाई पड़ा। वह निज तेज से समस्त लोकों को प्रकाशित करके मानो आकाशमण्डल का विपावन करते हुए आदित्यमण्डल की ओर आया है।

“स लोकान्तर्जात्सार्वन्त्वभासाः निर्विर्भासाः।
आदित्यमण्डलमुत्साहितं गमन्यात्यन्तिः।”

उस पुरुष के आते ही सूर्यदिवस ने अपना हाथ उससे मिलने के लिए बढ़ाया है तथा उन दोनों तेजस्वी पुष्पों को देख सभी को आश्चर्य हुआ अंत में उसे सूर्य कोन है? सबके द्वारा विश्व समान पुष्प को बारे में पूछने पर सूर्यदिवस ने कहा कि यह अनिदेव असुर या पन्न नहीं है; अवसुध इस मुनि ने उच्च्चुः प्रति ब्रह्म से सिद्ध होकर स्वर्ग में गमन किया है। ये कन्दमूर्धारी होकर, सूर्यो पते खाकर, अन्त में जल, वायु के पान द्वारा जीवन धारण करने वाले समाधि में निष्टावन।

1. महा०- 12/342/5.
2. वही- 12/350/10.
प्राण थे। इस प्राण ने वेदपाठ से भगवान् ऋग्वेद की स्तुति की थी जिस कारण इन्हें स्वर्ग में प्रवेश मिला है:-

“एष भूतपलाहारः शीर्षपिर्वाशनात्तथा। अवभक्षो वायुभक्षश्च आसीब्रिम्प: समाहितः।।
ऋषिवेदानां विप्रेण सहितान्तरभिप्रृत्ता। स्वर्गधारा कृतोऽध्योगो येनासो त्रिविव गतः।।”

नागराज कहते हैं कि सूर्यमण्डल का यही आश्रय वृद्धान्त मैंने देखा और वर्णित किया। हे भ्रान्त! उच्चवृत्ति से सिद्ध हुआ जो मनुष्य इच्छानुसार पूरी रीति से सिद्ध होकर उस सिद्धान्त में गमन करता है; वह सूर्य सहित पृथ्वी भ्रमण करने में समर्थ होता है। नागराज से संकेत प्राप्त कर वह धर्मिनिव भ्रान्त उच्चवृत्ति का आश्रय ले आत्मत्व को पाता है तथा भूमिवृद्धिपन व्यवस्थित ऋषिव द्वारा वह आश्रय मिली कथन वर्णित करता है। भागवतवाच्य ही इस कथन को नारद के समक्ष कहते हैं एवं नारद मुनि देवराज इदुः के समक्ष इस कथा को कहते हैं। देवर्षि नारद द्वारा वर्णित कथा को सुनकर देवराज इदुः को हृदय में भ्रामणों के लिए सत्कार का भाव और भी बढ़ जाता है।

2. ऋषिव्यों को उपदेश—

राजाओं, भक्तों एवं देवताओं के साथ-साथ देवर्षि नारद सर्वांस्मर्यज शुकदेव, व्यास, गार्ग्य, धृष्य सदृश सुनिज्जन्त को भी ज्ञानपदेश देते हैं तथा ज्ञानचर्चा करते हैं।

(क) शुकदेव मुनि को उपदेश—

भारतवर्ष के शान्तिपार्व में देवर्षि नारद का वर्णन शुकदेव मुनि को ज्ञान तथा वैषयक प्रदान करने वाले गुरु को स्प्न में प्राप्त होता है। शुकदेव मुनि को उपदेश देते हुए देवर्षि नारद कहते हैं :-

1. महा- 12/352/2, 3.
“नासित विद्यासमं चछुनाशित सत्यसमं तमः।
नासित रामसमं दुखं नासित त्यागसमं सुखम्॥”

अर्थात् विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है। सत्य के समान कोई तप नहीं है। राम के समान कोई दुख नहीं है और त्याग के समान कोई सुख नहीं है। पापकों से दूर रहना, सदा शुभकर्मों का अनुष्ठान करना, श्रेष्ठ पुरुषों के साथ व्यवहार और सदाचार का पालन करना— यही सर्वोत्तम कल्याण का साधन है, जिसे कल्याण की इच्छा हो, उसे सभी उपायों द्वारा काम और क्रोध का दमन करना चाहिए; क्योंकि ये दोनों दोष कल्याण का नाश करने के लिए उबल रहते हैं :—

“निदुःशितं कर्मणं पापास्तततं पुपपशीलताः।
सूदुःशितं समुवाचारं श्रेय एतवन्तुतमम्॥
सर्वोपायं कामस्य क्रोधस्य च विनिमयं।
कार्यं श्रेयोश्रितं तौ हि श्रेयोधातार्थमुदात॥”

देवर्षि का कथन है:— मनुष्य को चाहिए कि सदा तप की क्रोध से, लड़नी की ताक से, विद्या की मान और अपमान से तथा अपने आत्मा की प्रभाव से रक्षा करनी चाहिए :—

“नित्यः क्रोधात्तपो रक्षिष्ठिष्टं रक्षेऽच्च मत्सरात्।
विद्यां मानावमानायमात्रामां तु प्रमादवत्॥”

कुर्स भवान का परित्याग सबसे बड़ा धर्म है। क्षमा सबसे बड़ा बल है। आत्मा का ज्ञान ही सर्वोत्तम ज्ञान है और सत्य से बढ़कर तो कुछ है ही नहीं। सत्य बोलना सबसे उत्तम है परन्तु सत्य बोलने से भी श्रेष्ठ है हिन्दुकारक वचन बोलना। जिससे प्राणियों का अत्यन्त हिंद होता हो, वही सत्य है :—

“सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यावपि हिंदं वदेदू।
यदृ भूताहितत्मत्यंत्मत्चु सत्यं मत्स मम॥”

1. महाभ - 12/62/1.
2. वही - 12/62/2,3.

87
देवर्षि नारद शुकदेव मुनि से कहते हैं कि जो कार्य आरम्भ करने के सभी संस्कारों का त्याग चुका है, जिनके मन में कोई कामना नहीं है, जो किसी वस्तु को संग्रह नहीं करता और जिसने सब कुछ त्याग दिया है, वही विद्वान है और वही पण्डित है। अतः किसी भी प्राणी की हिंसा न करते हुए सबके प्रति भिक्षाधार रखकर विचरते हुए इस मनुष्य जन्म को प्राप्त करके किसी के साथ वे नहीं करना चाहिए। देवर्षि नारद शुकदेव मुनि को भोगों का परित्याग करने का उपदेश देते हुए कहते हैं कि जिन्होंने भोगों का परित्याग कर दिया है, वे कभी शोक में नहीं पड़ते, अतः प्रत्येक मनुष्य को भोगावधिक का त्याग करना चाहिए—

“निरामिषा न शोचन्ति त्यजेऽवा भिक्षाधार, परित्यज्यावधिक सौम्य दुःखतापरिहारसिम्।”

देवर्षि नारद कहते हैं जीव सदा कर्मों के अधीन रहता है। वह शुभ कर्मों के अनुस्थान से देव बनता है, दोनों के सम्बन्ध (पाप-पुण्य के भेल) से मनुष्य-जन्म प्राप्त करता है और केवल अशुभ कर्मों से पशु-पक्षी आदि नीचे योजनों में जाता है। यह शरीर पश्चात् रूप का घर है। यह बुद्धि और शोक से व्याप्त, रोगों का घर, दुःखशील, रजोगुणार्द्ध धूल से ठका हुआ और नाशवान है। अतः इसकी आस्थिति त्याग देनी चाहिए। जीवन में शोक के सहस्रों और भाष के सौंकों अवसर आते हैं, जो प्रतिवेदि ज्यों मनुष्यों पर ही अपना प्रभाव दालते हैं, विद्वान पर नहीं। जो शोकी बात के लिए शोक करता है उसे न तो अर्थ की प्राप्ति होती है और न धर्म की तथा न ही वीरिंग उसे मिलती है। दुःख की ओपिघि यदी है कि उसका बार-बार चिन्तन न किया जाए, चिन्तन करने से वह घटना नहीं अपितु बढ़ता ही हैः

“शोष्यज्ञेयसदृ दुःखशील यावेतन्नामुच्यतेऽतु। चिन्त्यावधिक हि न व्येति भूयश्चापि प्रवश्चते॥”

1. महाद - 12/62/10.
2. शोकस्थानं सहायति भक्तस्थानशतति च।
   तिस्वे तिस्वे मुद्राविशेषति न पण्डितम्। महाद - 12/62/15.
3. वधि - 12/62/17.
नित्य तथा अनित्य पदाथ्यों का निरूपण करते हुए देवर्षि नारद कहते हैं -
रूप, योग, जीवन, धन-संग्रह, नौरोजा और प्रियजनों समग्रम अनित्य है।
विन्यास मनुष्य को इनमें आसक्त नहीं होना चाहिए :-
"अनित्य योग-रूप जीवित द्वन्द्वसंघायः।
आरोग्य च प्रियसंसासो गृह्येष्चत्र न पणिद्धतः॥"
मानसिक दुःख को बुद्धि के द्वारा विचार से और शारीरिक रोग को औषधि-
सेवन द्वारा नष्ट करना चाहिए। शास्त्रज्ञों के प्रभाव से ही ऐसा होना संभव है।
दुःख आने पर बालकों की भावि रोग उचित नहीं है। वृणाश का कभी अन्त नहीं
होता। संतोष ही परम सुख है, अतः पणिद्ध लोग संसार में सन्तोष को ही उत्तम
धन समझते हैं :-
"अन्तो नाति पिपासायास्तु मिति परम सुखम्।
तस्मात्सन्तोषवेवः धनं पश्यति पणिद्धतः॥
अध्यात्मतमित्रिसौ निरेषपो निरामिषः।
आत्मनैव सहाययेन ययचरेतु स सुखी भवेतु॥"
अतः मे देवर्षि नारद श्री शुक्लदेव मुनि को संन्यास आङ्ग्रम ग्रहण करने की
तथा अपने जीवन के प्रयोजन को जानने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं :-
"अद्य कस्य कुतो वापि कः को मे ह भवेदित्त।।
प्रयोजनमतितिनित्यंमेवः मोक्षाश्रमे वसेतु।॥"
इसके अतिरिक्त नारद मनुष्य की दिन-प्रतिदिन नष्ट होने वाली आयु के
विषय में, शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष, सूर्य चन्द्र के विषय में, संयम, दक्षता, अहिष्ठा,
आशा का इत्यादि का उपदेश देते हुए गर्भगृह शिशु को माता के उदर में नौ महीने
तक उस्ते लटके रहकर मिलने वाले काठ का वर्णन करते हैं। तबतर्क देवर्षि
नारद उन्हें बाल्य, कौमार, योग, प्रांद्राज्ञ, जरा, ग्राणिनोद्ध एवं नाज या वर्णन

1. महा - 12/62/19.
2. वही - 12/62/20,22.
3. वही - 12/62/23.
करते हुए मनुष्य के दुःखों का वर्णन करते हैं तथा कर्मकाल भोग का उपदेश देते हैं।

इस प्रकार देवर्षि नारद वेदव्यास पुत्र शुकदेव मुनि को वैसमय जानोपदेश देते हैं। श्री शुकदेव के अतिरिक्त देवर्षि नारद महाभारत ग्रन्थ में वेदव्यास को पञ्चरात्र नामक आलोपदेश देते हैं। मार्कण्डेय ज्ञानि को धर्मशास्त्र एवं तत्त्वज्ञानोपदेश देते हैं 2 तथा धीर्म्य ज्ञानि को सूर्य के ‘आपोत्तरशास’ नाम का उपदेश देते हैं।3

(ख) त्रृणि देवभक्ति को उपदेश:

महाभारत के आश्वेषमधिकर्म ने देवर्षि नारद के उपवेशक रूप के वर्णन पुनः होते हैं। देवर्षि नारद देवभक्ति को ज्ञानि को उनके प्रश्नों के उत्तर के गद्यम से उपदेश देते हैं एवं वापसी। देवभक्ति नारद से पूछते हैं – देवर्षि! जब जीव जन्म लेता है, उस समय सबसे पहले उसके शरीर में किसी प्रवृत्ति होती है? प्राण, अपना, व्यान, समान अथवा उदान की :-

“जन्तो: सन्नायमानस्य किं न पूर्वं प्रवत्तते। प्राणोपदेश: समानो वा व्यानो उदान एव च।”4

त्रृणि देवभक्ति का प्राण सुनकर देवर्षि नारद कहते हैं – जिस निमित ज्ञान से इस जीव की उपस्थिति होती है, उससे भिन्न दूसरा पार्वत्य भी कारण रूप से पहले ही उपस्थित होता है। वह है प्राणों का इद्दा। जो ऊपर (देवलोक), निर्यक (मनुष्यलोक) एवं अधोलोक आदि में व्याप्त है।

“बेनायं सुउपरं जन्तुस्य तोप्पोवन्य: पूर्वमेव तस्म। प्राणाद्वन्त हि विज्ञेयं सन्निर्भृतमधुर्मध्यर्थ यतु॥”5

---

1. महाभ - 1/1/4.
2. वही - 13/54 - 63.
4. वही - 14/24/2.
5. वही - 14/24/3.

90
देवमत देववर्ण नाराय से प्राणों के हन्त के विषय में प्रशन करते हैं तब देववर्ण प्राण, अपना, व्यवहार, समान, उदान की उत्पत्ति एवं उनका कार्य बताते हुए इन्हें से जीव की सृष्टि होने का उपदेश देते हैं।

(ग) गानक मुनि को उपदेश—

महाभारत के शास्तिपर्व में ही देववर्ण नाराय गानक मुनि से ज्ञानार्तता करते हुए उल्लिखित है। देववर्ण नाराय को अपने समक्ष देख गानक मुनि उन्हें अयथा विद्वान जानकर मनुष्य के लिए व्या श्रेय एवं कल्याणकारी है, इस विषय में अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हैं। गानक मुनि को अपना शिष्य जान देववर्ण नाराय चारों आश्रयों, धर्म-अधर्म, चतुर्वेदीर्थ, सत्यचलन, अहंकारयाम, धर्मचरण, परिन्दत्याग, आत्मशाश्वता का भाग, उदारता, स्वर्ण रति, संतंतसंगी, इत्यादि शुभ गुणों को अपनाने का उपदेश देते हुए कहते हैं— जैसे विभाग चर्चावांत मनुष्यों को संघर्ष में अपना दाहक अभिन रूप प्रकट करता है, वैसे ही गतिविधि मूड लोग भी असार बहुभाषण से अन्तरात्मा का शुद्धत्व प्रकट करते हैं।

“कर्मणा यत्र पापेन वर्त्तन्ते जीवितंस्वः।
व्यवधावेत्तस्तूर्यं सस्पर्श्चछरणार्थिं।”

इस प्रकार गानक मुनि को उपदेश देते हुए देववर्ण नाराय कहते हैं कि पूर्वोक्त वर्णित जीविता के उद्देश्य से जो साधुदानचित होकर अपनी उत्पति करता है उसका स्वर्ण रूप तपस्या के सहारे इस लोक में अयथा कल्याण होता है :-

“एवं प्रवर्त्तमानस्तं बृत्तिः प्रणिहितात्मनः।
तपस्वेवेह बहुलं श्रेष्ठो व्यक्तं भविष्यतिः।”

3. राजाओं को उपदेश:

महाभारत ग्रंथ में देववर्ण नाराय कहीं अधिकारी दिया वाँ दण्डों को तीर्थ यात्रा की महिमा बताते हुए प्राणाय, पुष्कर, कन्यकुल, गंगा आदि का महाभाष्य सुनाते हुए,

1. महाभारत 12/276/46.
2. वहीं 12/276/57.
सीर्य यात्रा करने का उपदेश देते हैं। अन्यत्र धृतराष्ट्र की तपस्या सम्बन्धी श्रद्धा बढ़ाते हुए उन्हें धर्म मार्ग का पालन करते हुए तपस्या करने का उपदेश देते हैं।

(क) दुर्योधन को उपदेश-

महाभारत के उद्योगपर्व के अन्तर्गत भगवद्गदानपर्व में देवर्षि नारद उपदेशा के रूप में दर्शियाँ हैं। अनर्थकारी कारणों को करने वाले, कुशार्क पर चलने वाले एवं दुर्जयों में ही अनुरोग करने वाले दुर्योधन को देवर्षि नारद हितकारक उपदेश देते हुए कहते हैं कि अकारण हित चाहने वाले सूहदू की बातों को मन लगा कर सुनने वाला श्रोता दुर्लभ है। हितेशी सूहदू भी दुर्लभ है, क्योंकि महान् संकट में सूहदू ही लड़ा हो सकता है, कोई बन्धु-बाध्य नहीं -

"दुर्लभे वै सूहद्धूस्तो दुर्लभश्च हितत: सुहृत्र।
तिष्ठते हि सुहृद् यत्र न बन्धुस्त्वत्र तिष्ठते॥१

महर्षि गालव का इतिहास सुनाते हुए देवर्षि नारद दुर्योधन को संकेत करते हैं कि हठ एवं दुरारङ्ग ही पराजय का कारण बनती है। इसलिए दुर्योधन को मुख्यतः पाण्डवों से युद्ध का हठ ल्याग देना चाहिए। देवर्षि नारद कहते हैं कि एक समय धर्मराज, वसिष्ठ ऋषि का भेष बना कर श्रुताघि करने का अभिनय करते हुए विश्वामित्र की परिश्रम लेने गए। तब विश्वामित्र ने उन्हें उत्तम भोजन देने की इच्छा से चरुपाक बनाया, तथा अतिथिदेव ने उनकी प्रतीक्षा किये बिना अन्य तपस्याओं का अन्न खा लिया। जब विश्वामित्र उण्ण भोजन लेकर आये, तो धर्म यह कहकर वहाँ से चल दिये कि उन्होंने भोजन कर लिया। विश्वामित्र भोजन पात्र को तिर पर रख कर पेड़ की ओट में सी वर्ष तक कोवल बायु पीकर ही रहे। सी वर्ष पश्चात् धर्म पुनः वसिष्ठ का भेष बनाकर विश्वामित्र के पास आये। उन्हें तपस्या करते देख धर्म ने उनका भोजन ग्रहण कर लिया। विश्वामित्र की तपस्या के प्रभाव से वह अन्न ताजा एवं उण्ण ही था। मुनि निशाचरी धर्म ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर वहाँ से प्रस्थान किया। इससे प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने सेवा में लगे अपने शिष्य गालव ऋषि को आज़ा दी कि उसकी सेवा - सुहृदू श्रेे...
देवर्षि नारद कहते हैं कि विश्वामित्र से ऐसी गुरुदक्षिणा के विषय में सुनकर गार्ग ऋषि को गुरुदक्षिणा देने में सक्षम न होने के कारण आत्महत्या का विचार आया, लेकिन वे यह सोचकर लुक गए कि जो व्यक्ति पहले वचन देकर बाद में पीछे हटता है उस असल्यभाषी पुरुष के इस्तेमाल आपूर्ति हो जाते हैं।

"प्रतिशुद्धि कर्तिरेति कर्तव्यं तद्वक्षरः।
विश्वामित्रं गर्गं न्यायित।"

इस प्रकार शोक सन्तप्त होकर गार्ग ऋषि भगवान् विष्णु की शरण में गए। तभी विष्णुवाहन गर्ग ने उनका प्रिय करने की इच्छा से गार्ग ऋषि को धन धान्य से पूर्ण धारणों से अवमान करवाया। गर्ग ने गार्ग ऋषि को साध्यन्त्र द्वारा उपासनीय पूर्ण दिशा, तदन्तर पितरों सहित विश्वेश्वरिकण का निवास दक्षिण दिशा का वर्णन किया। इसके पश्चात् जल के स्वाभाविक चरण की प्रिय उस पश्चिम दिशा का वर्णन किया जिसमें इन्हें सौंदर्य हुई दिति के गभर का उच्चेद किया था, जिससे वस्त्रों की उपस्थिति हुई।

"अत्र देवी विद्यम् सुस्तामात्रप्रस्तवधारणिः।
विश्वेश्वरिकर्मचक्रो यत्र जातो भवद्ग्रंहः।"

तदन्तर गर्ग ने पाप से उदार करने वाली उत्तर दिशा का वर्णन किया।
इस प्रकार दिशाओं का वर्णन सुनकर गार्ग ऋषि गर्ग की पीठ पर सवार हो।

उनके मित्र राजा यथाति के पास गए तथा उन्हें गुह्यदक्षिणा का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। राजा यथाति ने स्वयं को इस गुह्यदक्षिणा को पूर्ण करने में असमर्थ जानकर गालव ऋषि को अपनी चक्रवर्ती उपनन करने की क्षमता रखने वाली, तेजस्विनी माधवी नामी कन्या दे दी। गालव ऋषि ने वह यथाति कन्या राजा हर्षशव, तथा दिवोदास को दी उन्होंने उससे एक-एक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न करके, गालव ऋषि को दो-दो सो श्याम कर्ण घोड़े देकर माधवी को लौटा दिया। अन्य घोड़े को प्राप्त करने में स्वयं को असमर्थ जानकर गालव ऋषि ने प्राप्त हुए सो श्याम कर्ण घोड़े तथा माधवी कन्या को भी ऋषि विश्वामिव को समर्पित कर दिया। इस गुह्यदक्षिणा से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने भी माधवी से एक चक्रवर्ती पुत्र-उत्पन्न किया। गालव ऋषि ने माधवी को उसके पिता यथाति को लौटाकर अपनी गुह्यदक्षिणा पूर्ण की। गालव ऋषि का वृत्तान्त सुनाकर देवर्षि नारद राजा दुर्गोधन से कहते हैं कि हे राजन! अयत्त आग्रह एवं हठ के कारण महर्षि गालव को भी महान्वल केश सहना पड़ा; नत: तुम्हें तुम्हारे सुहोत्र धार्मिक बात अवश्य माननी चाहिए दुर्गोधन नहीं करना चाहिए; क्योंकि दुर्गोधन विनाश पथ पर ले जाने वाला है। -

"एवं दोपोषभिमानेन पुरा प्राप्तो यथातिना।
निर्बन्धनतत्तित्मात्र च गालवेन महीपते।"

देवर्षि दुर्गोधन से कहते हैं कि पाण्डवों से युद्ध का विचार तुम्हें ल्याग देना चाहिए; अन्यथा तुम भारी संकट में पड़ जाओगे। इस प्रकार उद्योग पर्व में देवर्षि नारद अधिमी दुर्गोधन को समारूह पर चलने का उपदेश देते हैं।

(स्व) धृतराष्ट्र को उपदेश -

महाभारत के आश्रमवासिकर्प्त्व में देवर्षि नारद वन में स्थित धृतराष्ट्र गान्धर्वी एवं कुन्ती के पास पर्वत, देवल, व्यास एवं अनेक सिद्ध गुणियों एवं राजर्षि शत्रुपुर के साथ पधार कर धृतराष्ट्र की तपस्या विश्वास करना को बढ़ाते हुए उन्हें प्रेरणा एवं उत्साहवर्धक प्रवचन देते हैं। धर्म में उनका मन लगाने हेतु देवर्षि नारद धृतराष्ट्र को विभिन्न धार्मिक कथाएं सुनाते हैं; इन्हीं कथा प्रसंगों में 1.

1. महाभारत संस्कृत में प्रमुख ग्रन्थों में से एक है। इसमें भारत के तीन समय की कथा के रूप में प्रस्तुत है, जिसमें दुश्मनी के समांतर उद्धृति विश्वास और महाभारत के जीवन मनोविश्लेषण के लिए अनेक प्रतिकृतियों के साथ प्रस्तुत है।
नारद उन प्राचीन राजाओं का भी वर्णन करते हैं जिन्होंने वन में घोर तपस्या करके अन्त में स्वर्ग को प्राप्त किया। प्राचीन तपस्यी राजाओं का उल्लेख करते हुए देवर्षि नारद कहते हैं कि कौन से देशाधिपति राजा सहसुधित्व अपने पुत्र को राज्य भर सौंप इसी वन में तपस्या के लिए प्रविष्ट हुए एवं अपनी उद्देश्य तपस्या के प्रभाव से स्वर्ग को प्राप्त किया-

"स गत्वा तपसः पाटं बीपत्स्य कसुधाधिष्ठः।
पुरुंदस्य संस्थानं प्रतिपेदं महाबुति:।"

इसी प्रकार भगवान के पिलामह राजा वैश्यदेव, राजा पृष्ठ, मान्धातपुर भुवनेश्वर, धर्मीणा राजा शशीलोम इत्यादि ने भी इसी वन में तपस्या करके स्वर्ग को प्राप्त किया। इसके पश्चात् देवर्षि नारद गान्धारी सहित धृतराष्ट्र को तपस्या से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का संकेत करते हुए कहते हैं-

"ब्रह्मायान प्रसादवच्च त्वमपीयं तपोवनम।
राजनावयः तुप्रायां गतिमगम्यं गमिप्यसि।"

देवी कुंवरी को भी तपस्या का निर्देश देते हुए देवर्षि कहते हैं कि धृतराष्ट्र एवं गान्धारी की सेवा करने से उसे भी अपने पति के लोक की अष्ठांत स्वर्ग लोक की प्राप्ति होगी; क्योंकि जिसके युग्मित्तर जैसे धर्मीणा पुत्र है, उसकी लिए स्वर्ग दुर्लभ बनता नहीं है। इस प्रकार देवर्षि नारद के श्रद्धा वर्धक चयनों को सुनकर धृतराष्ट्र प्रसन्नता पूर्वक तपस्या करने को तत्पर हो जाते हैं।

4. भक्तों की उपदेशा:

देवर्षि नारद महाभारत में भक्त पुण्डरीक को श्रेयप्राप्ति के लिए नारायणपालन का उपदेश देते हैं। अन्यथा समुद्र तट पर ब्रह्मस्त्र करने वाले प्रेतों को जनायोदेश देते हैं। इसके अतिरिक्त देवता नामक भक्त को वृद्धि

1. महा० - 15/20/8.
2. वही - 15/20/15.
3. वही - 12/276/59.
4. वही - 12/316-319वां अध्याय.
की उत्पत्ति तथा लय का उपदेश देते हैं तथा समग्र के साथ जान संवाद करते हैं। दूरसंधित को शात्र श्रवण का लाभ बताते हैं तथा भगवान् श्रीकृष्ण की माता देवकी को दान का महत्त्व बताते हुए अधिकाधिक दान करने का उपदेश देते हैं।

इस प्रकार महाभारत प्राण्य में देवर्षि नारायण आदि से अन्तः पर्यंत राजाओं, भक्तों, ऋषियों - मुनियों एवं देवताओं के उपदेश देते हुए दृष्टिगत होते हैं।

जिज्ञासु नारायण

महाभारत के शातिर्व में देवर्षि नारायण जिज्ञासु के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। सब्विद्वद्वाता होते हुए भी देवर्षि नारायण दर्शन को प्रेरणा एवं धर्म जान देने के लिए असिंत देवल, समझ, नर नारायण इत्यादि ऋषियों के समक्ष जाकर जानवारि करते हैं।

(क) असिंत देवल ऋषि से ज्ञानवारि-

देवल ऋषि से देवर्षि नारायण सृष्टि की उत्पत्ति एवं तय के विषय में प्रश्न करते हैं तब असिंत मुनि देवर्षि नारायण से कहते हैं कि वर्तमाना सभी प्राणियों की दुःखि वासनाओं से प्रेरित करे कलोंकोश व कलोंकोश द्वारा समय जागुरु आदि जीवों को जिन आकाशकों तत्त्वों से उत्पन्न करता है, वही प्रणयू चैत्य - आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, अम्बिन।

“स्वभावः सृष्टि हृदयस्य कालो भावप्रणीतिः।

महाभूतानि पश्चेऽति तान्याहुभूतितंतत्त्वः।”

स्थायर जंग भवे सभी जीव पश्चात्त्वों से उत्पन्न होकर उन्हीं में लीन हो जाते हैं। जीव पुष्प पापया शरीर व्यतीत करते हुए, इस शरीर को क्षीण करता है,
कर्मशय होने से शरीर नष्ट होने पर फिर वह गुप्त होकर ब्रह्मावलंब लाभ करता है।

(ख) समझ ऋषि से—

इस ग्रन्थ में देवर्षि नारद समझ ऋषि के समक्ष जाकर जानवार्त रखते हैं।
समझ ऋषि देवर्षि नारद को उपदेश देते हुए कहते हैं कि जिस कारण से मनुष्य
जानी हुई करते हैं, उस जान का मूल इन्द्रियों की पवित्रता है। इन्द्रियों की
मोहाविद्वनता रूप प्रसन्नता ही उसका मूल कारण है, जान के अभाव में ही
इन्द्रियों मुग्ध और शोकाकूल होती हैं। इसलिए मूडेन्द्रि मनुष्य को जान लाभ नहीं
होता :-

“यस्मै प्रज्ञा कथयन्ते मनुष्याः प्रज्ञामूलो हीन्द्रियाणां प्रसादः।
मूडेन्द्रि शोचन्ति यवनिद्रियाणि प्रज्ञालाभो नासित मूडेन्द्रियस्य।”

(ग) नर नारायण ऋषि से—

महाभारत के शालिपर्व में देवर्षि नारद नर-नारायण ऋषि के समक्ष अपनी
जिज्ञासा प्रकट करते हुए जर्जर रहते हैं। श्रीप्रगामी देवर्षि नारद महामेव पर्वत के
शिखर से उत्तर कर ग्रन्थावलंब पर्वत पर नर-नारायण के आध्यात्मिक विद्वानों में
पहुँचते हैं। उनके स्वरूप को देखकर देवर्षि नारद के मन में अत्यन्त कौतुहल
होता है कि क्या ये दोनों मूनि ही देव, असुर, गुद्धत्व के, चर्चन हमें बन्दित
होते हैं? देवर्षि नारद नर-नारायण ऋषि का अर्थ-पाद से पूजन करके प्रसन्न
मन से उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे देव! तुम समस्त जर्जर के पिता,
माता और शाश्वत गुरु हो, इस समय तुम कौन से देवता तथा किस पिता की
पूजा करते हो इसे में जानने की इच्छा करता हूँ :-

“पिता माता च सर्वस्य जर्जरः शाश्वतो गुरुः।
कं त्वम् यज्ञस्वे देवं पितरं कं न विवचाहे॥” २
देवर्षि नारद के कौशलपूर्ण वचन सुनकर एवं देवर्षि की भक्तिमाता देखकर आत्मज्ञान रूपी गुणज रहस्य का वर्णन करते हुए कहते हैं - जो सूक्ष्म, अविभेद, अव्यक्त, अचल और शांत है; जो इन्द्रियों, विषयों और सब भूतों से परे है वहीं जीवों का अनन्तता और क्षेत्र रूप से वर्णित होता है; वही त्रिगुणातीत पुरुष रूप से कल्पित होता है :-

"पत्तसूक्ष्मविज्ञात्मव्यक्तमव्यक्तस्मधुवस्।
इन्द्रियश्रेयस्त्रियोऽपि सर्वभूतेः पश्चिमस्।
स सूक्ष्मसमात्रा भूतानां क्षेत्रशुचिति कथ्यते।
त्रिगुणविशिष्टपूर्वविश्वविशिष्ट तबोविशिष्टः।"

दोनों ऋषियों कहते हैं मनुष्यों की गति क्षेत्र (परमात्मा) है जो कि सर्वव्यापी और निर्मुख रूप से कहा जाता है और ज्ञानयोग के माध्यम से वह दिखाई देता है। हम दोनों (नर-नारायण) उसी से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा जान कर उसी सनातन आत्मा की हम पूजा करते हैं। चारों वेद, चारों आश्रम तथा अनेक वेद समाधी कर लोग भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करते हैं तथा वह शीघ्र ही उन भक्तों को सद्गति प्रदान करता है। पुरुषों में श्रेष्ठ महर्षि नारद पुरुषोत्तम नारायण के वचन सुनकर कहते हैं कि हे प्रभो! आपने स्वयम्भु होकर भी जिस निमित्त धर्म के स्थान में चार रूप से जन्म ग्रहण किया, उस लोकहितकर कार्य को सिद्ध करो,-

"वर्धणमातं प्रभुवेध जन्म तवोत्तमं धर्मंगुणै चतुर्थं।
तत्साधयं लोकहिताद्विर्भव महाजाति व्रजपूर्वकं तत्वान्तमृ॥"

देवर्षि नारद ऋषियों द्वारा अपने प्रश्नों के उत्तर पाकर अपनी जिज्ञासा को शांत करते हुए नारायण ऋषि की पूजा करके वहाँ से विदा होते हैं तथा योगमुक्त होकर आकाश में उठकर सहस्र सुमुख पर्वत के ऊपर आकर अदृश्य हो जाते हैं।

1. महार - 12/321/28,29.
2. वही - 12/322/2.

98
इस प्रकार देवर्षि नारद असित, देवन, समझु, नर नारायण इत्यादि ऋषियों से मानवार्थ करते हुए जिज्ञासु के रूप में दर्शनीय हैं।

विविध शक्ति सम्पन्न नारद

महाभारत के कथानक अनुसार यह स्पष्ट होता है कि देवर्षि नारद उच्च कोटि के महात्मा संत ब्रह्मानी तत्वज्ञ तथा विविध शक्ति सम्पन्न अलोकिक पुरुष हैं; जिनकी कृपा प्राप्त करने के लिए देव दानव तथा साधारण - असाधारण मनुष्य भी ललाभित रहते हैं।

(क) वनपर्व में -

महाभारत के इस पर्व के तीर्थ यात्रा पर्व में अर्जुन के विरुद्ध में व्याकुल पाण्डु के पास जाकर देवर्षि नारद जाकर केवल उन्हें कहते हैं कि धर्मालाओं में श्रेष्ठ नरेश! बोले तुम्हें किस जंगल की आवश्यकता है? मैं तुम्हें क्या दूं?

“उवाच च महात्मानां धर्माराजु युधिष्ठिरस।
बृह धर्मेण लुमे श्रेष्ठ केनाध्यु सः किं द्रवीते।”

इन शब्दों को सुनने मात्र से युधिष्ठिर स्वयं को कृतार्थ समझते हैं तथा मानते हैं कि सम्पूर्ण विश्व द्वारा पूजित देवर्षि नारद के संतुष्ट होने पर उनकी कृपा से पाण्डु के सब कार्य पूरा हो गया।

“तवार्थ तुष्टे महाभाग सर्वलोकाभिपूजिते।
कृत्तिकिष्ठेय भवेषेषु प्रसवातु तव सुवीरता।”

(प्राय: यह देखा जाता है कि जिसके पास देने का सामर्थ्य होता है वही दूसरों से माँगने को कहता है देवर्षि नारद का यह वचन - ‘मैं’ तुम्हें क्या दूं?, इस बात का प्रभाव है कि देवर्षि नारद भगवदगाथा से विविध शक्ति से सम्पन्न होने के कारण किसी को भी कुछ भी देने में समर्थ हैं।)

(ख) शास्त्र पर्व में -

1. महा- 3/81/7.
महाभारत के इस पर्व में देवर्षि नारद का सर्पस्नान कुलस्थित होता है। वे युद्ध विमुख होकर प्रभास क्षेत्र की ओर गये हुए बलराम को महाभारत युद्ध में हुए विनाश का आँका देखा वर्णन सुनाते हैं। सूर्य के वध का पश्चातापुर करने के लिए तीर्थ्य यात्रा पर गये हुए बलराम को देवर्षि नारद पलक्ष्यस्वरूप तीर्थ में निवास करने के आश्रम पर मिलते हैं। देवर्षि नारद को आया देख बलराम उठकर उनका अर्धपादावि से पूजन करते हैं तथा कौशल्य का समाचार सुनते हैं। तब देवर्षि नारद उन्हें कुस्कुल के अच्छे संहार का यथार्थ वृत्तान्त पूर्णप्रकाश करते हैं।

“ततोपस्याकथये राजस्मृत: सर्वेधिमेवित्।
सर्वंकुपट्य यथाृष्टमतीव कुस्कुलस्थितम्॥”

महाभारत युद्ध में उपस्थित समस्त नृपगणों की विवरण के बारे में जानने की उक्तियाँ व्यक्त करते हुए बलराम से देवर्षि नारद कहते हैं:\

“पूर्वप्रवा हतो भीष्मो दृश्यः सिर्धुपतितस्थः।

अर्थात् देवर्षि नारद कहते हैं कि भीष्म, सिर्धुपात्र जयद्रथ, दृश्य, वैशार्दन, कर्ण तथा उसके महार्षी पुत्र, भूरिश्रवा, पराकेश महराज शाल्य– ये सभी मारे गये हैं। तथा जो नहीं मारे हैं वो हैं– दुर्योधन की सेना में कृपाचार्य, कृतवर्धन तथा दृश्यपुत्र अपक्षाधिकारी। ये श्रुतावलि का मद्देन्द्र करने वाले तीन ही वीर श्रीराम कर गये हैं। अगर जब शल्य ने गये तब उन तीनों भी भय को मारे सम्पूर्ण दिशाओं में बलायन कर गये। शल्य की मृत्यु एवं इनके पलायन पर उक्त दुर्योधन भागकर दैपायन सरोवर में छिप गया। सरोवर में बिस्मार करते हुए दुर्योधन को श्रीकृष्ण सहित पाठकों ने जब तात पर पहुँच कर कठोर बचन कह कर कठोर पहुँचाया तब व्यक्ति दुर्योधन गया हाथ में लेकर सरोवर से बाहर आ गया:\

1. महाभारत 9/54/21।
2. वीरकृति 9/54/25–31।
“स तुद्रमानी बलवान् ताम्री राम समन्ततः।
उचितत्। स हद्राद दीर्घ: प्रभुद्ध महती गदाम्।”

तदन्तर दुर्योधन एवं भीम के मध्य होने वाले भावी युद्ध की ओर संकेत करके देवर्षि नारद बलराम के हृदय उस युद्ध को देखने की उत्कृष्टता उत्पन्न करते हैं; क्योंकि भीम एवं दुर्योधन दोनों बलराम के शिष्य हैं। उन्होंने बलराम से गदायुद्ध की शिक्षा प्राप्त की है।

“स चापुपसातो योद्ध भीमेन सह साम्प्रतम्।

पश्च युद्ध महाधोरं शिष्यस्योयिवि मन्यसे॥”

इस प्रकार शत्य पर्व में देवर्षि नारद द्वारा बलराम को पूर्व घटित महाभारत युद्ध का तथा भावि (दुर्योधन-भीम-युद्ध) का संकेत मिलता है, जिससे देवर्षि नारद की त्रिकालजनकता के प्रमाणों की पुष्टि होती है।

(ग) शालिपर्व में-

इस पर्व में सृजन—नारद आवश्यक से देवर्षि नारद की अद्वैत शक्तियों का ज्ञान होता है अर्थात् देवर्षि नारद में वर एवं शाप प्रसन्न करने की योग्यता के साथ-साथ जीवन तथा मृत्यु को भी शक्ति थी। यहाँ देवर्षि नारद द्वारा सृजन पुत्र सुवर्णवीरि को पुत्र रूप में प्राप्त करने तथा उसकी अकाल मृत्यु होने पर उन्होंने के द्वारा उसे पुत्रः जीवन मिलने का वृत्तांत्य शालिपर्व में मिलता है। देवर्षि नारद तथा पर्वत मुनि राजा सूक्ष्म के राज्य में कुछ काल पर्यंत निवास करते हैं वहाँ यथोचित समान एवं सेवा पाकर प्रसन्न होकर दोनों ऋषि सृजन के लिए प्रत्युत्पाद बनाने को प्रवृत्त होते हैं तथा उसे वीर्यवान्, दूढ़वती, बीर और देवराज इन्द्र के समान पदार्थों तथा पवित्र प्रसन्न करते हैं। इसके मल-मृत्र से सूक्ष्म उत्पन्न होगा और इसी से उसका नाम सुवर्णवीरि होगा। इसके अतिरिक्त देवर्षि नारद सुवर्णवीरि की अल्पायु का संकेत करते हुए उसकी देवराज इन्द्र से सुक्षा करने।

1. महाभ 9/54/32.
2. बही 9/54/33,34.
का भी संकेत करते हैं। पुत्र की अल्पायु के विषय में सुनकर सुभ्र पुनः दोनों 
उत्तापों से अपने पुत्र की वैरायु के लिए प्रार्थना करता है तब देवर्षि नाराय उसे 
वचन देते हैं कि जैसे ही तुम्हारा पुत्र मृत्यु को प्राप्त होगा तब तुम्भेसा स्मरण 
करना तुम्हारे स्मरण करने ही में वहाँ आकर तुम्हारे पुत्र को पुनः जीवन प्रदान 
करें और यमलोक को गये हुए तुम्हारे पुत्र को भी मैं वापिस लाऊँगा।

"अहं ते दयितं पुत्रं प्रेतराजवर्षं गतम। 
पुनरंस्यामि तदृपं भा शुचः पृष्ठिविपते।"

देवर्षि नाराय के आशीर्वाद से सुभ्र को सुर्वण्डीची नामक पुत्र प्राप्त होता 
है जो वात्यकल से ही इन्द्र के समान तेजस्वी, पराक्रमी प्रतीत होता है, उसके 
पराक्रम से भयभीत देवराज इन्द्र यह सोच कर उसे मारने को उद्यत होते हैं कि 
यह बड़ा होकर उसका स्वर्ग आधिपत्य छीन न ले। देवराज इन्द्र की आज्ञा से 
उनका वज़ शेष का रूप धारण करके वन में भ्रमण करते हुए सुर्वण्डीची बालक 
को मार देता है। तब राजा सुभ्र पुत्र शोक से व्यक्त होकर देवर्षि नाराय का 
स्मरण करते हैं। तभी देवर्षि नाराय वहाँ आकर सुभ्र को उपदेश देकर उसका 
पुत्रशोक दूर करके अपने वचन के अनुसार उसे पुनः जीवन प्रदान करते हैं। 
देवर्षि नाराय के आशीर्वाद से सुभ्र पुत्र सुर्वण्डीची पुनः जीवित होकर यथा रू 
वर्ष पर्यंत निर्विलंगा से राज्य शासन करता है-

“कार्यायामात्र राज्यं च पितरिः स्वर्गं तु नृप। 
वर्षाणां शतमेकं च चहर्षं भीमबिक्रमः।”

इस प्रकार देवर्षि नाराय की दिव्य शक्ति से मृतक बालक सुर्वण्डीची को 
पुनः जीवन प्राप्त होता है।

(घ) आश्रमवासिक पर्व में—

इसके अतिरिक्त महाभारत के इस पर्व में भी देवर्षि नाराय धूतराष्ट्र, विदुर, 
सजय आदि को भविष्य में मिलने वाली गति के विषय में बताते हैं जिससे उनके

1. महा- 12/31/21.
2. वही- 12/31/43.

102
विविध दृष्टि सम्पन्न होने के प्रमाण मिलते हैं। धृतराष्ट्रुदि को तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त करने का संकेत देने के पक्षात्मक देवर्षि नारद महाराज पाण्डु को प्राप्त हुई गति के विषय में धृतराष्ट्रु दो बताते हैं कि वे देवराज इन्द्र के साथ स्वर्ग में ही रहते हैं तथा अपने सम्बन्धी जनों को प्राप्त याद करते हैं :-

"पाण्डु: स्मरति से नित्यं बलदन्तु: समीपसः।
त्वो सदैव महाराजः प्रेयसा स च योक्तांति।"

महात्मा विदुर एवं सज्जन को मृत्योपार्थ भिन्ने वाली गति के विषय में देवर्षि नारद कहते हैं कि महात्मा विदुर युधिष्ठिर के शरीर में प्रवेश करते तथा युधिष्ठिर शरीर स्वर्ग जायेगे एवं सज्जन उस्में का विन्दन करने के कारण वहाँ से सीधे स्वर्ग को जायेगे :-

"वयमेतत्त प्रपश्यामो नृपते विव्यवचक्षुः।
प्रवेश्यति महात्मान विदुरश्च युधिष्ठिरस्।।
सुज्यास्तवनृद्धानाविति: स्वर्गमवास्यति।"

देवर्षि नारद द्वारा विदुरुदि को मृत्योपार्थ भिन्ने वाली गति के विषय में सुनकर राजवंश शत्रुपाल उनसे धृतराष्ट्रु के मरणोपार्थ भिन्ने वाले लोक के विषय में पूछते हैं। शत्रुपाल के वचन को सुनकर विदुरुदि देवर्षि नारद उनसे बताते हैं कि एक दिन वे देवीचा से भ्रमण करते हुए इन्द्रलोक गये। वहाँ वे इन्द्र से तथा राजा पाण्डु से भी मिले। वहाँ राजा धृतराष्ट्र की तपस्या के विषय में था चर्चा हो रही थी तब इन्द्र ने कहा की उनकी आयु की जो अनित्म सीमा है वह पूर्ण होने को है अब केवल तीन स्वयं ही शेष रह गये हैं। उनके समाप्त होने पर राजा धृतराष्ट्र गान्धारी के साथ कुद्रे के लोक में जायेगे, वहाँ से विवाहविषयों से सम्बन्धित हो विवाह से गन्धर्व, देव, राज्यों के लोकों में स्वेच्छानुसार विचार करेंगे। धृतराष्ट्र के सभी पाप तपस्या से नष्ट हो जायेगे :-

1. महाभारत 15/20/17.
2. यही 15/20/19,20.

103
“तत्तः कुबेरभवन्म गान्धारीसहितो नुपः॥
प्रयाता धूतराष्ट्रोत्यो राजराजाभिभद्धृकृतः॥
कामगे विमानेन विद्वाभरणभूषितः।
ऋषिपुरो महाभाषेः तपसो दशदलिखितः॥”

इस प्रकार देवपिंवर्जनारद द्वारा बताए गए सर्गोपरातः गतिः के वर्णन से देवपिं
तारद के विद्यापूर्दस्मान होने के प्रमाण मिलते हैं।

परम्पराकर्ता नारदः

महाभारत में त्रिलोकगामी देवपिंवर्जनारद के दर्शन परम्पराकर्ता के रूप में हमें यत्र-तत्र मिलते हैं। कहीं देवपिंवर्जनारद पाण्डवों को सलाह देते हैं तो कहीं राजा
अश्वत्तिन्न को तथा अन्यत्र भगवान् श्रीकृष्ण को परम्परा देते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।
महाभारत के मुख्य पात्रों को परम्परा देते हुए देवपिंवर्जनारद का वर्णन निम्न
प्रकार से मिलता है -

(क) पाण्डवों के परामर्श कर्ता -

आदि पर्व में - महाभारत के इस पर्व में देवपिंवर्जनारद पाण्डवों की दृष्टि विशयक
चिन्ता को जान लेते हैं : -

“पाश्चातीं भवतबमेका धर्मपत्नी यशोतिनि।
यथा वो नात्र भेदः स्वात्तेथा नीतिविहिषयताम्॥”

पाण्डवों की इस चिन्ता का निवारण करते हुए देवपिंवर्जनारद उन्हें सून्द-उपसन्द
की कथा सुनाते हुए कहते हैं : -

“सुन्दोपसुन्दससुरू भातरौ सहितासुभौ।
आस्तमवध्यवन्येषा त्रि० लोकेषु विश्रुतौ॥
एकराजावेक्षुवेक्षुवेक्षवाज्यासनाशो।
तिलोकतमास्ती हेतोर्योन्यमभिज्ञातः॥”

1. महाभारत- 15/20/33,34.
2. चही- 1/200/17.
3. चही- 1/200/18,19.
देवर्षि नारद पाण्डवों को द्रीपदी विषयक एक ऐसा नियम बनाने का परामर्श देते हैं जिसका उल्लंघन करने वाले को निश्चित दण्ड भोगना पड़ेगा। पाण्डव यह नियम बनाते हैं :-

“द्रीपदिः न सहस्रनमन्योर्षोभिः। सत्वोद्राश्च वर्ष्णि बहाचारी वने वसेतु॥”

इस प्रकार देवर्षि नारद के परामर्श से युधिष्ठिरादि पाण्डवों का भारुपनेह बना रहता है।

सम्भापर्व में- इस पर्व में देवर्षि नारद युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ का परामर्श देते हुए कहते हैं :-

“समथोऽसि महीं जेतु भातस्ते वशो स्थिता।।
राजसूयः क्रुद्यैः भमहर्ष्वेऽति भारत॥”

राजसूय यज्ञ का महात्म्य बताते हुए देवर्षि नारद कहते हैं कि इस यज्ञ को करने वाले राजा आज भी स्वर्ग में अन्य राजाओं से ऊँचे पद पर विशाल हुए सुख भोग रहें हैं :-

“एतस्माकारणात्पार्थ हरिश्चन्द्रो विराजते।।
यज्ञन्ते ते महेन्द्रेण मोदन्ते सह भारत॥”

इस प्रकार देवर्षि नारद द्वारा प्रेषित युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ का संकल्प करते हैं।

वनपर्व में- प्रस्तुत सन्ध्य के ‘वनपर्व’ में देवर्षि नारद काम्यक वन में उपस्थित अर्जुन के वियोग से व्यक्तिक चारों पाण्डवों और द्रीपदी को तीर्थ यात्रा करने की प्रेरणा देते हुए उत्सिद्धी होते हैं।

(ख) श्रीकृष्ण को जरासन्ध-वध सम्बन्धी परामर्श-

1. महा०- 1/204/28.

105
आप्त—पुष्प देवर्षि नारद महाभारत ग्रन्थ में साधारण सन्तुष्टों के साथ—साथ भगवान् श्रीकृष्ण को भी परामर्श देते हुए वर्णित हैं। महाभारत के सब्जार्थ में देवर्षि नारद महाभारत युद्धकिं में राजसूय यज्ञ विषयक इच्छा को श्रीकृष्ण के समक्ष रखकर यज्ञ का अनुमोदन प्राप्त करते हैं तथा भगवान् श्री कृष्ण को यज्ञ से पूर्व जयेन्द्रत्यो को मारने का परामर्श देते हैं जो कि श्रीकृष्ण का परम भाव है तथा उसके द्वारा यज्ञ में विच्छेद उपयुक्त होने की संभावना है :—

“यदि त्वेन महाराज यज्ञ प्राप्तमभीष्टि |
यतस्तीव तेपां मोक्षाय जयेन्द्रधधध्याय च।”

इस प्रकार प्रकार ग्रन्थ में देवर्षि नारद के परामर्श से अन्य दुष्टों का संहार भी वर्णित है।

(ग) मदनरेश नारद सावित्री को विवाह सम्बन्धी परामर्श—

महाभारत के ‘वनपर्व’ में देवर्षि नारद मदनरेश अवश्यपि को उनकी पुत्री सावित्री के विवाह के विषय में परामर्श देते हुए उल्लिखित हैं। अवश्यपि की कन्या सावित्री भारत भ्रमण द्वारा दुमतेश्वर मुनि सत्यवान् को मन ही मन पति रूप में वरण कर लेती है और अपने पिता से कहती हैं—

“आतीच्छल्लेपु धर्मोत्तमा क्षत्रियः पृथिवीपति। |
दुमतेश्वर इति र्वाहः पश्चातन्यथो बभूव हृ। |
तत्पुत्रः पुरुरे ज्ञातः संबुद्धश्च तपोवै। |
सत्यवानसुरूपैः मेघायो भर्तिः मनसा कृताः।”

यथाश्रय देवर्षि नारद जानते हैं कि एक वर्ष पश्चात् सत्यवान् की मृत्यु निश्चित है तथापि सत्यवान् के अन्य गुणों को देखते हुए एवं सावित्री के तुल्य संकल्प तथा पति प्राप्ति धर्म की शक्ति को जानते हुए राजा अवश्यपि को सत्यवान् तथा सावित्री का विवाह करवाने का परामर्श देते हैं।

(घ) अर्जुन को बहादृश्त का उपसंहार करने का परामर्श—

2. वीरी—3/298/7-10.
महाभारत के सौपकार्य में अथवत्मक युद्ध में पाँचो पाण्डवों को बालकों के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता है। चूंकि ब्रह्मास्त्र को ब्रह्मास्त्र से ही काटा जा सकता है, इसलिए अर्जुन भी तपस्या द्वारा प्राप्त ब्रह्मास्त्र का अनुसंधान करते हैं। 

गणीवधी अर्जुन द्वारा ब्रह्मास्त्र छूटते ही सहसा प्रज्वलित हो उठता है। उससे प्रलयायम् के सभी बड़ी-बड़ी लपटें उठने लगती हैं। इसी प्रकार दोषपुत्र 
अथवत्मका का ब्रह्मास्त्र भी तेजोपथं से चिरकार बड़ी-बड़ी ज्वालाओं के साथ जलने लगता है। उन दोनों अस्त्रों के तेज समस्त लोकों को संतुष्ट करते हुए वहाँ स्थित हो जाते हैं। 

उसी समय वहाँ सम्पूर्ण भूतों के आत्मा नारद तथा भरतवंश के 
पितामह व्या ये दो महार्षि एक साथ दर्शन देते हैं: 

“महर्षि सहिते तत्त्र शृणुमाससुत्वया। 
नारदः सर्वभूतात्मा भारतानां पितामहः। 

दीप्तयोगरस्मिः स्थितोऽपि परस्मायजस्यः।”

अर्जुन एवं अथवतमका द्वारा चलाए ब्रह्मास्त्रों को शान्त करने के लिए नारद 
एवं वेदयोगस्त्रिपि उनके प्रज्वलित अस्त्रों के बीच में खड़े होकर, अर्जुन को 
ब्रह्मास्त्र लौटाने का परमर्श देते हैं क्योंकि वे जानते हैं केवल अर्जुन ही ब्रह्मास्त्र 
को लौटाने की क्षमता रखता है अथवत्मका नहीं, क्योंकि अर्जुन ने ब्रह्मचर्य का 
पालन करके इन्द्रिय संयम करके तपस्या द्वारा ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया है; जबकि 
अथवत्मका अधिकतिन्द्र न है और ब्रह्मास्त्र को वापस लौटाने का सामयिक आवश्यक 
ज्वालनिः पुष्टं ही होता है इसलिए अर्जुन को ब्रह्मास्त्र को शान्त करने का 
परमर्श देते हुए दोनों अस्त्र कहते हैं: 

“नानाशस्त्रविव: पूर्वें वेदयोगतीता महारथः। 
नैतस्त्रवः मनुष्ये तै: प्रयुक्तं कथश्रम। 
किमिवः साहसं चीरो कृत्तवत्ती महात्मयम्।”

1. सहारो— 10/14/11-13. 
2. वही— 3/14/16.

107
देवर्षि नारद एवं व्यास ऋषि की आगा का पालन करते हुए अर्जुन उस ब्रह्मार्थ का उपसंहार कर देते हैं जिसका अनुसंधान उन्होंने पाण्डवों की सुरक्षा के लिए तथा शरु द्वारा चलाए ब्रह्मार्थ को शांत करने के लिए किया था। अशवत्थमा अजितेन्द्रिय होने के कारण ब्रह्मार्थ को लौटाते में रक्षम न होने के कारण दोनों ऋषियों के आदेशानुसार पाण्डवों को वह मनि देने के लिए बाधित हो जाता है; जिसके प्रभाव से वह शरार, व्याधि, क्षुद्रा, देवता, दानव, नाग इत्यादि से सुरक्षित रहते हैं। इस प्रकार ‘सौंपिक पव’ में देवर्षि नारद एवं व्यास के परामर्श से पाण्डवों की सुरक्षा होती है।

भूत-भविष्य ज्ञाता नारद

जिलोकी में भ्रमण करने वाले देवर्षि नारद अन्तर्यामी एवं भूत-भविष्य को जानने वाले अर्थात् भविष्यवक्ता रूप में महाभारत में दृष्टिगोचर होते हैं। महाभारत के ‘बनपर्व’ में अवयवति राजा तथा उनकी कथा सावित्री के सम्भावना की आयु के विषय में भविष्यवाणी करते हुए देवर्षि नारद कहते हैं:-

“एकोवेषस्य नाम्योजस्तिः सोद्ध्र प्रभृति सत्यवान्।
संवतसरेण श्रीणायुरेहन्यासं करिज्यति।”

एक वर्ष पश्चात् सत्यवान् की मृत्यु को निष्कर्ष देने वाली भविष्यवाणी तब सत्य होती है जब सत्यवान् की सेवा में संतान सावित्री उसकी अनुगामिनी बनकर वन-वन भटक रही होती है:-

“तत्: सत्यवृत्त: कायात्पाशवृद्धं वशं गतम्।
अहंधात्मान्म युधिष्ठिरं निश्चकर्ष यथं बलात्।
तत्: समुद्रात्वपूणं गतश्चवसं हतप्रभम्।
निवेद्येष्ठं शरीरं तदव्यूहवाप्रियदर्शनम्।”

1. महार० - 3/298/22.
इसके अतिरिक्त महाभारत के ‘समापत्त’ में देवर्षि नारद युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ द्वारा स्वर्गप्रव्रति इत्यादि गुणों के साथ-साथ इस यज्ञ से होने वाले महान् क्षत्रिय विनाश का भी वर्णन करते हुए कहते हैं—

“युद्ध न क्षत्रियशामन पृथ्वीविक्षय कारणम्।
किंतुदेव निमिट्य च भवत्त्यत्र क्ष्यावहम्।”

इस प्रकार देवर्षि को परामर्श अनुसार राजसूय यज्ञ भी होता है तथा उनकी भविष्यवाणी के अनुसार इस यज्ञ के बाद महान् क्षत्रिय संहार होता है।

तीनों लोकों में सम्मानित नारद

महाभारत में देवर्षि नारद का सम्मान राजा, ऋषि-गुणि, भक्त, साधारण लोग, देवता, ब्रह्मा, विश्वेश्वर, यहाँ तक कि अनुभव तथा हुदू लोग भी करते हैं। कहीं देवर्षि नारद चिंतामणि, अर्धवपति इत्यादि राजाओं से तो कभी युधिष्ठिरादि पाण्डवों से, कहीं प्रेतायों से तो अन्य इन्द्रादि देवताओं से, कहीं शुक-व्यास-मैत्रेय-प्रभुति ऋषि गुणियों से तथा कहीं स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण से उचित सम्मान तथा अर्धपादादि से श्रेष्ठासन प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त कस, विश्वेश्वर आदि की सभा में जाकर भी देवर्षि नारद उन्हें उचित मार्ग दिखाकर सम्मान ही प्राप्त करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि महाभारत ग्रंथ में देवर्षि नारद विपुल सम्मान के पात्र हैं।

नीतिज्ञ नारद

महाभारत में देवर्षि नारद का नीतिज्ञ रूप भी दर्शनिय है। सन्धि, विग्रह, युद्ध आदि से परिपूर्ण राजनीति और कूटनीति का उन्हें पूर्ण: ज्ञान है। दुर्योधनादि वैश्यों के राज्य की सूचना प्राप्त करके युधिष्ठिरादि पाण्डवों के राजनीति विषय प्रश्नात्मक उपदेश देते हुए देवर्षि नारद कहते हैं—युधिष्ठिर ! क्या तुम्हारा धन यज्ञ-दान-कुटुम्ब रक्षा इत्यादि आवश्यक कार्यों के निवारणार्थ पूरा पड़ जाता है?

1. महाभारत- 2/2/83.
“कतचिद्वर्ष्णं कल्पनते धर्मं च रसते मनः।।
सुवयानि चानुभूयते मनस्य न विहन्यते॥’’

dेववर्षि नारद कहते हैं- हे युधिष्ठिर! क्या तुम ब्राह्मण-वैश्य-शुद्र इन तीन वर्णों की प्रजा के प्रति धर्मार्थ युक्त उदार चयवहार करते हो? क्योंकि जो इस प्रकार आचरण करता है वह इहलोक और परलोक दोनों में सुखी रहता है। -
“कतचिद्वर्ष्णं पूर्वर्मदेव पितामहः।
वर्तसे वृद्धिमक्षुद्रां धर्मार्थसहिता विपु॥’’

dेववर्षि नारद कहते हैं कि क्या तुम राजोपित छः गुण (व्यावहार शक्ति, प्रगलब्धता, तर्क-कृत्यलता, भूत-काल स्मृति, भविष्य-टूटि, नीति निपुणता) सात उपाय (गौत्र, ओषध, इन्द्रजाल, साम, दाम, दण्ड, भेद) अपने तथा शतु के बल की भली-भाली परीक्षा करते हो? -
“कतचिद्विज राजगुणोऽपि स्वादिः सप्तोपायःसत्यसत्यवचनः।
बलावलं तथा सम्यक चतुर्दश परिक्षसे॥’’

राजन! तुम्हारी गुप्त मन्नन्ता शतु के राज्य तक तो नहीं पहुँचती अर्थात् राजा को द्रारा के प्रति अपने कर्तव्यों का सजगता पूर्वक पालन करना चाहिए, यही श्रेष्ठ राजनीति है। तदन्तर युधिष्ठिर द्वारा वेद, धन, स्त्री और शास्त्रज्ञान की सफलता के बारे में पूछे जाने पर देववर्षि इसके उत्तर में वेदों की सफलता अभिन्नता से, धन की सफलता दान और भोग से, स्त्री की सफलता पुत्र प्राप्ति से तथा शास्त्र ज्ञान की सफलता शील और सदाचार से बताते हैं- -
“अभिन्नता फला वेदा दत्तभुक्तकल्याणको धनम्।।
रतिपुत्रताला दारा शीलवृत्तकल्याणको शुभम्॥’’

1. महाभ- 2/2/5.
2. वर्ष- 2/2/6.
3. वर्ष- 2/2/7.
इस नारद नीति का वर्णन करके देवर्षि युक्तिपित्ते से कहते हैं कि जो राजा इस शीतके से ब्रह्माणादि चारों वर्गों की राख में सन्नद्ध रहता है वह परम सुख को प्राप्त कर अन्त में इन्द्रलोक में जाता है—

"एवं यो वर्तमाते राजा चातुर्वर्यस्य रक्षणे।
स विहत्येह सुसुखी शाक्तिति सलोकताम्।"

युक्तिप्रदाता नारद
आश्वेषिधिकपर्यं—

महाभारत के इस पर्व में देवर्षि नारद युक्ति प्रदाता के रूप में दर्शनीय हैं। राजा महत का देवर्षि नारद संवर्त मुनि को गुरु बनाकर उनसे यज्ञ कराने की युक्ति बताते हैं। अद्वैतपुरुष बृहस्पति इन्द्रादि देवताओं के अतिरिक्त किसी अन्य मनुष्यादि को यज्ञ न कराने का संकल्प कर लेते हैं। महत जब गुरु बृहस्पति से यज्ञ का अनुरोध करते हैं तो गुरु बृहस्पति उन्हें मनुष्य जानकर यज्ञ करने से इनकार कर देते हैं। इससे यथित हो राजा महत देवर्षि नारद की शरण ग्रहण करते हैं। देवर्षि नारद राजा महत से सम्पूर्ण ब्रुतान्त सुनकर उन्हें अत्तिरिक्त संवर्त मुनि जो कि गुरु बृहस्पति के ही भावा हैं, उन्हें यज्ञ के लिए गुरु बनाने का संकेत देते हैं। राजा महत द्वारा उनका निवास स्थान तथा वेषभूषा पूछने पर देवर्षि नारद कहते हैं— वे इस समय वारणसिय में महेश्वर विश्वनाथ के दर्शन की इच्छा से पांगल जैसा रेख धारण किए हुए आनन्द से धुम रहे हैं।

"उन्मुख्तवेषं विभवत स च चाहकमीति यथा सुखम्।
वाराणस्यां महाराज वर्णनेपुष्पिकं वर्षम्।"

तत्पश्चात् देवर्षि नारद राजा महत को संवर्त मुनि को पहचानने के लिए एक युक्ति बताते हैं जिसमें वे कहते हैं कि उस पुरी के प्रवेश द्वार पर कहीं से गुरु लाकर रख देना। जो उस पुरी को देखकर सहसा पीछे लौट पड़े, उन्हें ही
संबंध मुनि समझना, वे जहाँ कहीं जाएँ उनके पीछे-पीछे जाना। जब वे किसी एकान्त स्थान में पहुँचे तो हाथ जोड़कर शरणापन्न हो जाना :-

“तस्य द्वारं समासाय न्यसेथा: कुणपम क्वचिदित।
तं दुष्टः यो निवर्तेन संस्कर: स महीपते॥
तं पुष्पाङ्कुमच्छेठा यत्र मच्छेठे स वीर्यवान।
तेभेकान्ते समासाय प्राप्तलिः: शरणं क्रे॥”

देवर्षि नारद द्वारा बताई युक्ति के अनुसार राजा मश्त संबंध मुनि को ढूंढ लेते हैं तथा उनके गुरु वृहस्पति एवं इनमें द्वारा प्राप्त हुए तिरस्कार के बारे में बताकर अपना यज्ञ करवाने के लिए तैयार कर लेते हैं। देवर्षि नारद द्वारा बताई युक्ति से राजा मश्त संबंध मुनि द्वारा यज्ञ संपादन करवा कर असीमित धन लाभ प्राप्त करते हैं; जिस वैभव को देख देवराज इन्हें तथा देवगुरु वृहस्पति भी आशर्यचकित रह जाते हैं।

मार्गवश्यक नारद

(क)महर्षियों को मार्गवश्यक-

महाभारत के शास्तिपर्व में देवर्षि नारायण अन्य महर्षियों को शुभ कृत्य करने की प्रेरणा देते हुए मार्गवश्यक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। महर्षि वेद व्यास अपने पुत्र शुकदेव एवं अन्य शिष्यों के साथ हिमालय पर्वत पर स्थित आश्रम में विराजमान होते हैं। वहाँ महात्मपर्वी नारद पहुँचते हैं तथा उस आश्रम में कोई भी वेदत्वनि न रहती तथा सभी के मौन रहने का कारण पूर्णते हैं। देवर्षि नारद को सर्ववेद मार्ग-वश्यक जानते हुए महर्षि वेदवास उसके उस कर्म के अनुसारत्म के विषय में पूछते हैं, जिससे उनका एवं उनके शिष्यों का मन प्रसन्न हो। वेदवास के अंग्रेज़ी नारद श्रमिक उन्हें मार्ग दिखाते हुए कहते हैं कि वेद पढ़कर उसका अभ्यास न करना ही दोष है, ब्राह्मण के लिए प्रत न करना ही दोष है, वाहीक देश के लोग पृथ्वी के दूषण हैं, और ग्रंथों को कौशल, ही मल है। इसलिए उन्हें
वेदध्वनि से राखस भय जनित अंधकार को दूर करते हुए दुखितम पुत्र (शुकदेव) के सहित वेद पाठ करना चाहिए -

"अनामनायमला वेदा ब्राह्मणस्यावतं मलम्।
मलं बृहस्पति वाहीका: स्त्रीणां कौतुहलं मलम्॥
अधीतां भवान्वेदनसार्थं पुत्रेऽणं धीमत॥
विश्वेदवनरहांघोपेण रक्षोभयकृतं तम॥।"

इस प्रकार नारद सुनि द्वारा गार्गर्दर्शन युक्त सचन सुनकर महर्षि वेद व्यास वेदाभ्यास में दृढ़व्रती हो जाते हैं।

प्रेरणा स्त्रोत नारद
(क)शान्ति पर्व में-

महाभारत के शान्ति पर्व में शिवामह भीष्म महाराज युधिष्ठिर को अहिंसा तथा सत्य धर्म के आचरण का मार्ग बताते हुए देवर्षि नारद द्वारा वर्णित एक उच्चबुद्धि ब्राह्मण का इतिहास बताते हैं, जिसमें देवर्षि नारद कहते हैं कि वितर्क राज्य में एक ब्राह्मण यजुर्वी भगवान विष्णु की पूजा करने को तत्पर होता है, वह यज विषयक धार्मि, शाक इत्यादि सम्पूर्ण सामाजिक एकत्रित करके वन में प्राणियों की अहिंसा के माध्यम से स्वर्ग साधन यज्ञ का अनुष्ठान करता है।

"उपगम्य वने पृथ्वी सर्वभूताविहिंसया।
अपि मूलफलेकिर्यो यज्ञ: स्वर्यः परंतप॥।"

उस ब्राह्मण की पुकारचारिणी नामी भायो यज्ञ में हिंसा होने के भय से यज नहीं करना चाहती, लेकिन स्वाभी के शाप के भय से वह उसके स्वभाव की अनुपस्थिति होती है। ब्राह्मण के यज्ञ में होता का कार्य युक्ताचर्य का यंत्रज एक अध्यात्म करता है। उसी वन पर एक सूर्य आकर ब्राह्मण के समक्ष स्वर्ग को यज्ञ में बल के रूप में समर्पित करने का परमर्श देता है; ताकि ब्राह्मण एवं हिरण दोनों को स्वर्ग प्राप्ति हो सके। लेकिन ब्राह्मण इस हिंसामय कार्य को करने से इन्कार

1. शहा० - 12/315/20,21.
2. यहै० - 12/264/5.
कर देता है। तत्प्रस्थात् सविन्यमल की अधिष्ठात्री देवी सावित्री उस यज्ञ में प्रकट होकर पशु को अभि में होम करने को कहती है तो ब्राह्मण यह कहकर उन्हें भी गणा कर देता है कि वह सबवासी का वध नहीं करेगा—

“तत्तस्तु यज्ञे सावित्री साक्षात् संन्यमन्त्रयत्।
निमन्त्रणयति प्रयुक्त न हन्यां सहवासिनम्॥”

भगु पुनः पुनः ब्राह्मण से स्वर्य को यज्ञ में हवन करने का अनुरोध करता है। भगु के बार-बार के अनुरोध एवं स्वर्य के सुख भोग के लोभ से ब्राह्मण भगु का वध करके स्वर्य प्राप्ति करने के लिए हिंसामय यज्ञ करने को तत्पर होता है। साक्षात् धर्म ही अनेक वर्षों तक हिरण का रूप धारण करके उस वन में निवास कर रहे होते हैं तथा ब्राह्मण की परीशा एवं हिंसामय यज्ञ से निर्बल ते ही दे यह कृत्य करते हैं। ब्राह्मण जैसे ही यह विचार करता है कि में हिंसामय यज्ञ करके स्वर्य लाभ कहेंगा वैसे ही उसकी महत्त्ता तपस्या नष्ट हो जाती है; क्योंकि इस प्रकार का यज्ञ कदापि हिंसकारी नहीं है।

“तस्य तेन तु भावने भूमिष्ठवाससत्यदा।
तपो महत्त्माविविषत्र तन्माधिनसा न वजियाद॥”

इसके पश्चात् भगवान् धर्म स्वर्य उस ब्राह्मण को हिंसाभरी हत्या करते हैं, जिससे ब्राह्मण को पत्नी सहित स्वर्य लोक की प्राप्ति होती है। अंत में देवर्षि नारद कहते हैं कि अहिंसामय धर्म ही सब फलों को देने वाला है, परन्तु हिंसा अधर्म है और अहिंसा करने वाली भी है—

“अहिंसा सकलो धर्मम निष्प्रेष्मानमहिला।”

इस प्रकार देवर्षि नारद द्वारा बताए ब्राह्मण के वृत्तान्त के माध्यम से पिलामह भीम राजा युधिष्ठिर को हिंसामय यज्ञ करने की इच्छा से निरूत्त करते।

1. महान् - 12/264/10.
2. वही - 12/264/17.
3. वही - 12/264/19.
हें। यहाँ देवर्षि नारद पाण्डवों एवं सम्पूर्ण मानव जाति के लिए प्रेरणा के रूप में बनते हैं।

सर्वज्ञ नारद

(क)अनुशासन पर्व में—

इस ग्रन्थ के अनुशासन पर्व के दानधर्मपर्व में पुनः देवर्षि नारद की सर्वज्ञता एवं त्रिकालसता के प्रमाण मिलते हैं। उन्हें प्रत्येक काल में घटित घटनाओं का इतिहास का पूर्ण ज्ञान है। कोई भी पूर्ण बुद्धान्व जानने के लिए सभी त्रिपि-गुनि, भक्ति, राजा इत्यादि देवर्षि नारद की शरण ग्रहण करते हैं। इस सम्बन्ध में एक आव्यूह ‘दानधर्मपर्व’ में कहा गया है जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण बारह वर्षों में समाप्त होने वाले ब्रज की दीक्षा लेकर एक पर्वत पर तपस्या करते हैं वहाँ उनका दर्शन करने देवर्षि नारद, पर्वत, व्यास, धीम्य, देवल, कश्यप इत्यादि जितने विविध त्वरित्वादि आते हैं तथा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं। वहाँ श्रीकृष्ण को तपस्या के तेज से भोग ज्वाला प्रकट होती है तथा वह सम्पूर्ण पर्वत को भस्मीभूत कर देती है। जन्म- जन को आर्य देश श्रीकृष्ण अपनी सहुर मुख्य से सम्पूर्ण पर्वत को पूर्ववत् रथ मनोहर बना देते हैं। इस घटना को देश अविनाश आश्चर्यप्रकृति होते हैं तथा बालजीत करने में कुशल देवर्षि नारद को भगवान् की बात का उल्लर्त देने के लिए नियुक्त करते हैं। देवर्षि नारद इसी प्रकार घटित हुई एक पूर्ण घटना को सुनाते हैं जिसमें शिव-पार्वती का संबंध निहित हैः—

"ततो नारायणसुहन्नारदं भगवानृपि:।
श्रुति-योभस्या सार्थं संवादं प्रत्यभाषत॥’’

देवर्षि नारद कहते हैं कि एक बार हिमालय पर्वत पर देवाधिदेव भगवान्
श्रुति तपस्या कर रहे थे। तभी देवी पार्वती पीछे से आकर उनके नेत्र बन्द कर दिये। महादेव के नेत्र बन्द होने से त्रिलोक में अन्धकार छा जाने से सर्वत्र इस प्रकार हाहाकार मच गया जैसे सूर्य का नाश हो गया हो।।। तभी भगवान् शिव को भूकुटि से तीसरा नेत्र प्रकट हुआ और निम्न प्रकाश निकला। धीरे-धीरे व प्रकाश

1. महात् 13/140/1.
सम्पूर्ण पर्वत को जलाने लगा तथा सभी पेड़ - पीथे जीव - जन्तु चाहिए मुक्त होकरलगे। अपने पिता हिमालय का इस प्रकार विनाश होता देख देवी पार्वती अत्यन्त भयभीत हो गई। पार्वती को व्यक्त जान भगवान् शिव ने अपनी एक मुक्तान से
सम्पूर्ण पर्वत को पूर्ववात कर दिया। तब आश्चर्यबहार की होकर देवी पार्वती ने
भगवान् शिव से पूछा कि आपने यह तीसरा नेत्र क्यों प्रकट किया? किसलिए
पहले तो आपने सम्पूर्ण पर्वत को भस्म कर दिया फिर दृष्टि मात्र से पूर्ववात कर
dिया?

"किमर्थे से ललाटे वै तृतीयं नेत्रमुक्तिक्षम।
किमर्थे च मिरिदेशः सप्तकिंवणकान्त।!
किमर्थे च घुन्द्वद प्रकटिस्तृत्वस्त्वया क्रृत।
लभेव दुहसंस्थनं: कृतोदयं ते पिता मम।"

देवी पार्वती के प्रश्नों का उत्तर देते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि जब
उन्होंने उनके दोनों नेत्र को बन्द कर दिया थे तब सम्पूर्ण जगत से सूर्यदेव नष्ट हो
गए एवं सर्वसमुल्क अध्यक्ष फैल गया। उस अध्यक्ष को दूर करने के लिए जगत की
रक्षा के लिए ही उन्होंने तृतीय नेत्र प्रकट किया और उस नेत्र की ज्वाला से सर्वसमुल्क
प्रकाश तो हुआ लेकिन सब कुछ जलाने लगा, फिर उस ज्वाला को शांत करने
हेतु उन्होंने अपने दोनों नेत्रों को स्वयं बना दिया। उसी
प्रकार श्रीब्रह्मण ने भी अपने तेज से ज्वालाकिरण हुए रहता को अपनी सीमा दृष्टि
पर्वत का दृष्टि बना दिया। इसके अतिरिक्त देववर्ध नारद कहता भगवान् शिव द्वारा
देवी पार्वती को मिला हुआ उपदेश सुनाते हुए कहते हैं कि देवी पार्वती भगवान्
शिव द्वारा स्वयं बना दिया। उनके सम्पूर्ण विवाह के चिन्हों के बारे में अप्रत्याचार मुख, जटाएँ,
पिनाकमुख, कपिलवर्ध की जटाओं इत्यादि के बारे में पूर्ववत् हैं तो शिव उनके
ले जो उन्हें चार मुखों के उपरि का करार ब्रह्मा जी द्वारा बनाई गई तिलोकत्मा कन्या बनाते
हैं जो उन्हें प्रसन्न करने हेतु उनके चारों तरफ परिक्रमा कर रही थी। उसे देखने
के लिए जब भगवान् शिव ने चारों तरफ दृष्टि पुनाई तो उनके चार मुख प्रकट

1. महाभारत - 13/140/41,42.
हो गए तथा ब्रह्मा के द्वारा बास से यो धनुष बनाए गए—एक पिनाक तथा दूसरा शार्क। पिनाक धनुष भगवान् शिव को मिला तथा शार्क भगवान् विष्णु को।
इसीलिए शिव ‘पिनाकपापी’ कहलाते हैं। अश्मान में सबसे अधिक शान्ति एवं जनशुन्य स्थान होने के कारण शिव ने उसे अपना प्रिय स्थान बताया।

dेवर्ण नारद कहते हैं कि देवी पार्वती द्वारा धर्म का लक्षण पूछने पर भगवान् शिव कहते हैं—किसी भी जीव की हिंसा न करना, सत्य बोलना, दया करना, मन—इन्द्रियों पर संयम रखना तथा अपनी शक्ति के अनुसार दान देना गृहस्थाश्रम का उत्तम धर्म है—

“अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकूलम्।
शमो दानं वयशोक्तित गार्हस्थ्यो धर्मं उत्तमं:॥
पररथिष्ठितां समस्यां न्यायस्त्रिपरिक्षण्म्।
अर्थादनविरोधो महुर्गस्तस्य वर्जनम्॥
एष पञ्चविधो धर्मो बहुशास्त्रः सुखोब्धः॥”

पराह स्त्री से संसार न करना, धरोहर और स्त्री की रक्षा करना, बिना दिए किसी की वज्ञ न लेना तथा गा भद्रा का त्याग—ये धर्म के पाँच भेद हैं जो सुख की प्राप्ति कराने वाले हैं।

इस प्रकार भगवान् शिव देवी पार्वती को ब्रह्मण, शार्क, वैश्य, गृह एवं व्यास निरूपण करते हैं। इस वृत्तान्त से देवर्ण नारद के विकालदत्त एवं इतिहासवेताः होने के प्रमाण मिलते हैं।

गोपनीय विषयों का ज्ञाता

महाभारत के शान्ति पर्व में युधिष्ठिर एवं नारद संवाद के माध्यम से जात होता है कि देवर्ण नारद को अनेक ऐसे गृह विषयों की जानकारी भी थी; जिनके बारे में किसी अन्य को न पता हो। महाभारत युद्ध के महाविनाशकान्त व्याकूल युधिष्ठिरादि पाण्डवों के समकालीन वृत्तिकार ब्रजवास सहित देवर्ण नारद उनकी कुशलता तथा चित्त की स्थिरता को बारे में प्रश्न करते हैं। तथी युधिष्ठिर झूठी

के बन्धु-बांधवों तथा अपने सगे सम्बन्धियों के मुख्यतम दुःख को व्यक्त करते हैं। साथ ही उनसे अपने ज्येष्ठ भाता कुन्ती पुत्र कर्ण के विषय में भी प्रश्न करते हैं जो कि युद्ध में बीरगति को प्राप्त हो चुका है। युधिष्ठिर भाता कर्ण के वध के कारण स्वयं को भ्रातुहत्या का दोषी मानते हैं; किन्तु वे इस विषय से पूर्णतया अनजान थे कि कर्ण उन्होंने की माता का पुत्र है। युधिष्ठिर देवर्षि नारद से कर्ण को मिले शाप के विषय में पूछते हैं; जिसके कारण जीतते हुए कर्ण के रथ का पहिया पृथ्वी में धांस गया था। तब देवर्षि नारद युधिष्ठिर को कर्ण के शाप का वृत्तान्त लुंगाते हुए कहते हैं :-

कन्या अवस्था में ही सूर्य के समागम से कुन्ती के गर्भ से सूर्य के समान तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। कुन्ती द्वारा जन्म होते ही त्याग दिए जाने पर सूर्यो द्वारा उसका पालन होने पर व सूर्यपुत्र कहलाया। द्रोणाचार्य से उसने धनुर्विद्या सीखी तथा बाल्यकाल से ही दुर्योधन से मैत्री कर ली। जब कर्ण ने द्रोणाचार्य के समक्ष पाण्डवों से विशेष शास्त्र मान प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की तो द्रोणाचार्य उनसे विद्या प्रदान करने से इनकार कर दिया। तब कर्ण ने महेन्द्र परवत के राज करने वाले परशुराम के पास जाकर द्वारा स्वयं भूषण बता कर छल से उनसे मुख्य शास्त्रविद्याएं प्राप्त की। वहाँ एक दिन दैवत्व कर्ण द्वारा ब्रह्मण की गाय का वध हो गया, जिससे क्रूरवति होकर ब्रह्मण ने कर्ण को शाप दिया कि जिनके लिए ईर्ष्या वश होकर कर्ण युद्ध का अभ्यास कर रहा है, उनके साथ जब उसका दैर्घ्य युद्ध उपस्थित होगा, उसी समय कर्ण के रथ के चक्र को पृथ्वी ग्रास करेगा। ऐसा होने पर जब वह दुसरे-शोक से बुझता हो जाता है तब शत्रु दूरद विराज्म प्राप्त करके उसका जीवन काटता -

“शेष वित्तपूर्णसे नित्यं यद्यतम घटसेनिनिमाः।
युध्यस्तेने पाप भूसेविषयक्सरसिद्धाति।।
तत्तत्सः महीयस्ते मूर्तिः ते विचेततसः।।
पातिष्याति विक्रम्य श्रुगेच्छ नराधम्।।”

1. महाभ- 12/2/24, 25.
ब्रह्माण कर्ण से कहता है कि जैसे उसने प्रभाव होकर ब्रह्माण के पत्र की गाय का प्राणनाश किया है, वैसे ही उसकी प्रभाव अवस्था में ही उसका शत्रु उसके सिर को काट के पृथिवी पर गिराएगा—

“वथेयं गर्हता मूढ प्रभातरेत्ति त्वैया मम। प्रभभादुर्य सत्समाराति: शिशरस्ते पातिषयस्वति।”’

देवर्षि नारद कहते हैं कि एक दिन जब परशुराम कर्ण की गोव में विषाण कर रहे थे तब शद कर्ण की जांच पर विशेष वीट ने काटा और उसके लहू की धारा बह निकली। लेकिन गुरु को निद्रा में विशेष न हो इसलिए कर्ण पीढ़ा को सहन करते हुए विचलित नहीं हुए, लेकिन जब परशुराम को रक्त की धारा स्पर्श की तब उनकी निद्रा स्वल्प गई और क्रोधित होकर वे कर्ण से बोले कि तेरे धर्म से तेरे क्षत्रिय होने का बोध होता है क्योंकि ब्रह्माण जाति कर्ण भी अधिक कष्ट सहन नहीं कर सकती, सच बता तू कौन है? ऐसा पूछने पर कर्ण ने उसके सब सत्य कह दिया। तब परशुराम ने उस पर क्रोधित होकर उसे शाप दिया कि उसने जो भी ब्रह्माष्ट्र विधा उनसे प्राप्त की है वह शत्रु की अनुपस्थिति में तो यदि स्वतंत्र लेकिन शत्रु के समक्ष जाते ही उनका दिया सारा शत्रु जाते उसे विस्मृत हो जायेगा—

“यसामानिन्योपचारितो झाललोभाविनि ल्यो।
तन्मातदेतत्त्रे मूढ ब्रह्माष्ट्र प्रतिभास्वति।”’

परशुराम के आश्रम से निवास होकर कर्ण अपने मित्र दुर्योधन के पास गया। देवराज इन्हें ब्रह्माण देवों में कर्ण से कब्र भुगूदल का दान मांगने पर कर्ण ने उन्हें वह दे दिया। कर्ण की दानवीरता से प्रसन्न होकर इन्हें उसे एक अग्रेष शास्त्र प्रदान किया जिसका प्रयोग केवल एक बार ही हो सकता था। इस प्रकार देवर्षि नारद युद्धिष्ठर से कर्ण का सम्पूर्ण चूटान्त बुझाकर कहते हैं कि तुम्हारे

1. महाभ—12/2/26.
2. कथी—12/3/30.
कर्ण सहित सी कौरव भ्राता ब्रह्मणों के शाप के कारण युद्ध में नारे गये इसलिए 
उनके लिए शोक करना उचित नहीं है।

“एवं शान्तस्तव भ्राता बाहुबिलिपणी विद्विति।
न शुचिः पुरस्वाय युझने निधनं गति।”

देवर्षि नारद से कर्ण के विषय में गोपनीय वृत्तान्त सुनकर युधिष्ठिरसिद्धि का 
ब्रह्मवियोग जन्य दुःख शांत होता है।

दुःख शोक हर्ष नारद

(क) लोपणवर्म में—

महाभारत को लोपन पर्व के ‘अभिमन्युवधपर्व’ में देवर्षि नारद राजा 
अकम्पन ने शोक को हरते हुए युधिष्ठिरसिद्धि पाँचों पाण्डों के संस्थापन मन को 
शांत करते हैं। महाभारत युद्ध के चक्रवृद्धि में अर्जुन पुत्र अभिमन्यु अल्मायु में ही 
कोरों द्वारा मार दिया जाता है। उसकी शैर गति को धारा होने पर जब पाँचों 
पाण्डु उसकी मृत्यु का शोक कर रहे होते हैं तब महर्षि व्यास, उन्हें राजा 
अकम्पन और देवर्षि नारद का संबंध सुनाकर उनका शोक संतप्त ह्यस्त शांत 
करते हैं। महर्षि वेदव्यास कहते हैं—सतमुग में अकम्पन राजा का पुत्र हरि भी 
अभिमन्यु की भौति संग्राम में दुःख पराक्रम दिखाकर अन्त में शतुरुकों के हाय से 
मारा गया।

“स कर्मु दुःखकु रस्ता संग्रामे शतुतापनः।
शान्तिविनिविहारः सरस्ये पुत्राय युधिष्ठिर॥”

पुत्र शोक में दिन रात व्याकुल रहने वाले राजा अकम्पन के पास देवर्षि 
नारद जाते हैं तब अकम्पन राजा मृत्यु के विषय में प्रश्न पूछता है तथा अपने 
पुत्र की मृत्यु की घटना भी सुनाता है। तब देवर्षि नारद अकम्पन को वह कथा 
सुनते हैं जिसके अनुसार ब्रह्मा द्वारा जगत की सृष्टि तो होती है लेकिन उस समय 
संप्रभु की कोई व्यवस्था न होने के कारण सम्पूर्ण जगत को मृत्यु रहित देखकर

1. महार- 12/5/15.
2. वही- 7/52/29.
‘प्रजा सृष्टवा तथा ब्रह्मा आदिष्वण्म पितामह।
अरसांहतं महातेजा दृष्टवा जगविदं प्रभु।
तत्स्य दिन्ता समुद्रान्ता संहारं प्रति पार्थिव।
चिन्तयन्त्र द्रासीं वेद संहारं कसुधाधिप।’

जग्भ संहारं के लिए चिन्तित हो उठते हैं लेकिन उन्हें जग्भ को संहार का कोई उपाय माता नहीं नहीं हो पाता है -

‘प्रजा सृष्टवा तथा ब्रह्मा आदिष्वण्म पितामह।
अरसांहतं महातेजा दृष्टवा जगविदं प्रभु।
तत्स्य दिन्ता समुद्रान्ता संहारं प्रति पार्थिव।
चिन्तयन्त्र द्रासीं वेद संहारं कसुधाधिप।’

जग्भ संहार के लिए चिन्तित हो उठते हैं लेकिन उन्हें जग्भ को संहार का कोई उपाय माता नहीं नहीं हो पाता है। भगवान् शिव कहते हैं -

‘प्रजासमात्मित्रं हि कृतो यत्तस्तवम विभो।
यत्वा सुषा वृद्धवच्च ब्रूतवामा: पृथवितथा।
संहारं प्रसीद्वतं मा रुपे कसुधाधिप।
मा प्रजा: स्थावराशाहेव जागमाघं द्वनीनं।’

वेदमें नारद कहते हैं - प्रजा के लिए प्रजा के लिए महातेजा का वचन सुनकर ब्रह्मा द्वारा उस क्रोधानि का उपसाहर होने पर उनकी इन्द्रियों से एक नारी प्रकट होती है -

‘श्रुतवा हि वचनं देव: प्रजासां हितकारणे।
तेजं: सदारायामाभुव भीतरस्तात्तथारमि।
उपसंहरस्तस्तस्त सममिनां रोहजं तथा।
प्रादुर्वेवभूव विश्वेश्यो गोभ्यो नारी महात्मन।’

मृत्यू नाम से सम्बोधित करते हुए ब्रह्मा उस नारी को जग्भ का संहार करने की आजा देते हैं। किन्तु संहार के प्रति अनिच्छा व्यक्त करते हुए मृत्यु

1. महाभारत - 7/52/38,39.
2. वामी - 7/53/1,7.

121
नानी नारी ब्रह्म से धेरुकाश्रग में जाकर तपस्या करने की आगा मांगती है। वहाँ सहजों वर्ष कन्ठर तपस्या करके मृद्यु ब्रह्म को प्रसन्न कर लेती है, तब ब्रह्म उसे तपस्या का कारण पूछते हुए वर मांगने को कहते हैं—

“मृद्यो किंमिदमत्यन्त तपोसे चरसीति ह।”

तब अधर्म से भयभीत मृद्यु ऐसा वर मांगती है जिससे उसे रोते चिल्लाते प्रजावर्ग का वध न करना पड़े।

“नान्ह हन्या प्रजा देव स्वस्थाण्ड्राक्रोजातिस्वथा।
एतविच्छावि सर्वेष तवसौ वर्षस्म भ्रमश।”

ब्रह्म मृद्यु को बचने देते हैं कि प्रजाओं का संहार करने पर उसे कोई अधर्म अथवा दोष नहीं लगेगा—

“अधर्म नास्ति ते मृद्यो साहसन्या इमा: प्रजा।”

देवर्षि नारद राजा अक्कमण से कहते हैं कि मृद्युकाल आने पर वही मृद्यु काम और क्रोध का परिप्रेक्ष्य करके अनासक्त भाव से प्राणियों का संहार करती है। सम्पूर्ण देवता भी भय हैं इसलिए उसे अपने पुत्र के लिए शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि उसका बालक स्वर्गलोक में रहकर आनन्द का अनुभव कर रहा है—

“सर्वं देवं मन्तरमस्त्वान्विष्टाः पुत्रं मां शुचो राजसिन्ह।
स्वर्गाप्राप्तो भोजते ते तनुजो नित्यं स्मित्व वीरलोकान्वय।”

देवर्षि नारद कहते हैं कि प्रजावर्ग का प्राण लेने वाली इस मृद्यु को ब्रह्म ने ही रचा है इसलिए धीर पुरुष मृद्यु को ब्रह्म द्वारा रचित हुआ निश्चित विधान समझ कर मे हुए प्राणियों के लिए शोक नहीं करते—

1. महा— 7/53/29.
2. वही— 7/54/30.
3. वही— 7/54/33.
“आत्माणं देव प्राणिनो चन्द्रिति सर्वे
नेतान् मृत्युविशयकपाणिनिस्ति।
तस्मान्युतान्त नानुशोचाचन्ति धीरा
मृत्युं ज्ञात्वा निश्चिन्न्यं बहसुष्टम्॥”

इस प्रकार देवर्षि नारद के सुख से मृत्यु विषयक उपायथान् सुनकर राजा अकम्पन का दुख दूर हो जाता है। नारद-अकम्पन आत्मान्त के माध्यम से व्यक्त ज्ञान युद्धपूर्वार्थि पाण्डवों का अभिमन्युवध विषयक दुख शान्त करते हुए उन्हें धर्म धारण करके युद्ध के लिए पुनः तैयार होने के लिए कहते हैं कि जो महाध्युर्धर अभिमन्यु पूर्वजन्म में चन्द्रमा का पुत्र था, वही वीर महारथी समाजगण से समान सहनों को सामने श्रद्धा का वाच करके ख्यात, शक्ति, गदा आदि से युद्ध करता हुआ मारा गया तथा दुःखशीत हो पुनः चन्द्रतोक में चला गया है-

“अभिमन्यु प्राणवं हत्वा प्रमुखे सर्वक्षिद्धिनामः।

अप्रमान्तः सुसंबन्धः शीघ्र्योद्धुपाक्रयः॥”

इस प्रकार देवर्षि नारद से अकम्पन तथा अभिमन्यु समन्वित आत्मान्त को सुनकर युद्धपूर्वार्थि पाण्डवों का सन्तति हुदय शांत होता है तथा वे युद्ध के लिए स्वयं तैयार कर लेते हैं।

महाभारत के शान्ति पर्व में नारद-अकम्पन आत्मान्त की पुनरावृत्ति होती है; जब युद्धिश्चित पितामह भीष्म से मृत्यु विषयक प्रश्न करते हैं तो भीष्म उन्हें देवर्षि नारद द्वारा राजा अविकर्मक के पुत्र शोक को दूर किये जाने का आख्यान सुनाते हैं।

1. महा— 7/54/50.
2. वही— 7/54/56—58.
3. वही— 12/249-257वां अं।
(ब) शान्तिपर्व में—

इसके अतिरिक्त महाभारत के शान्तिपर्व में देवर्भि नारायण देव के दर्शन दुष्क्षणार्थी को रुप में प्राप्त होते हैं। इसना ही नहीं महाभारत युद्ध में विनाश को प्राप्त हुए युद्धिष्ठिर के बन्धु-बांधवों के विरह जन्य सत्ताप को मिटाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण भी देवर्भि नारायण द्वारा राजा सुर्याधिपति के सत्ताप निवारण का दृष्टांत सुनाते हैं जिसमें देवर्भि नारायण राजा सुर्याधिपति से कहते हैं—

"सुर्याधिपति दिशा च प्रजाः सर्वास्थि सुर्याधिपति।
अविकृत्वा भिग्रहामस्तति का परिवेनाः।"

तदनत्तर सुर्याधिपति के दुःखनिवारणार्थ देवर्भि नारायण पूर्ववर्ती राजाओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अविकृति का पुत्र राजा महाभरत भी गए जिन्होंने देवराज इन्हें स्थायी पथने के कारण अपने यज-सैक्षेवन द्वारा उन्हें परास्त कर दिया था।

अर्थात् इस मर्यादाएं में गरणीश गनुशब्द के लिए शोक नहीं करना चाहिए—

"अविकृतं महात्मेऽत्म च मृत्युं सुर्याधिपति।
य: स्थायित्वसहस्त्रं देवराजं पुरूषदेवस्य।"

अनेकों राजसूय एवं अशोक पुरा यज्ञ सम्पन्न करने वाले दुष्क्षण एवं शाकुतत्वाते के पुत्र राजा भरत तथा महाभरत नारायण विद्याधिकारी, पिता के आजाकारी, प्रजापालक राजा राम तथा अतिथि सत्तार के लिए अपने प्राण त्याग करने वाले संकृति के पुत्र रत्नदेव भी क्वाल को गाल में समा गये—

"रत्नदेवं च संस्कृतं गृहं सुर्याधिपति।
सम्पर्काराध्य य: शक्तिविवर्म वरं लेभे महात्मपाः।
अन्नं च नो नहु भृवेदायत्थं च लभेमही।
श्रद्धा च नो मा व्यगमन्म्य च याचिक्षा कर्तं।"

1. महात्मा- 12/11/8.
2. वचे- 12/11/10.
3. वचे- 12/11/24,25.

124
देवर्षि कहते हैं- पृथ्वी विजयी महावीर महाराज शिविर धर्म- अर्थ- मान- 
वैराज दिवशिव में सृष्टि के पुत्रों से भी श्रेष्ठ थे परन्तु ऐसे गुणों से युक्त महावीर शिविर राजा की भी मृत्यु हो गई, तब सृष्टि को दान और यज्ञ से रहित अपने पुत्रों की मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिए-

"न भूतं न भविष्यं च सर्वराजस्य सृष्टयो।"

पुनःप्राच्यांतरागाम मा पुत्रसमुत्तमयः।।

इस प्रकार राजाओं का वृत्तान्त सुनाकर देवर्षि नारद शोक सन्ताप नष्ट सृष्टि का दुख दूर करते हैं तथा भगवान् श्री कृष्ण देवर्षि नारद- सृष्टि का दृष्टांत देखकर राजा युधिष्ठिर का सन्ताप दूर करते हैं।

सूचना प्रसारक देवर्षि नारद

महाभारत के वनपर्व के ‘नलोपाघ्राण योध’ में देवर्षि नारद का सूचना प्रसारक रूप देखने को मिलता है अर्थात् जगत में हो रहे सभी कार्यों की जानकारी तो देवर्षि नारद को रहती ही है, लेकिन उसका प्रचार- प्रसार करने का कार्य देवर्षि नारद स्वयं करते हैं। विद्वंभ नरेश अपनी पृथ्वी दमकल्लु को दृढ़ खिन्न मनसा देखकर उसकी विवाह योग आयु का विचार करके उसके लिए श्रेष्ठ स्वावलंबक का आयोजन करते हैं; जिसमें समस्त पृथ्वी के बीर नरेशों को आमंत्रण दिया जाता है। सभी देवतुल्य राजाओं को वहाँ जाते देख देवर्षि नारद अपने स्वतः पर्यावरण मुनि के साथ देवलोक (इन्द्रलोक) में जाकर उन्हें यह संकेत करते हैं कि पृथ्वी लोक पर सभी राजा लोग सकुशल हैं। राजाओं के बारे में सुनाकर देवराज इन्द्र जिन्सा प्रहत करते हुए कहते हैं कि वे बीर पृथ्वी आजवल इन्द्रलोक में क्यों नहीं आते? तब देवर्षि नारद कहते हैं कि विद्वंभ नरेश भीम के यहाँ दमकल्लु नाम की कथा उत्पन्न हुई है, जो मनोहर रूप सीतारम में पृथ्वी की समग्र युवियों को लांघ गई है। अब शीघ्र ही उसका स्वयंवर होने वाला है उसी में सब राजा तथा राजकुमार जा रहे हैं।

1. महाभारत 12/29/43,44.
“विदर्भ राजो दुहिता दमयन्तीति विश्रुता।
हुणेण समतिक्रान्ता पृथिविया सर्व्योपितः।।
तस्या स्वयंवरः शक्र भविता न धिराविव।
तत्र गच्छन्ति राजा राजपुत्राश्च सर्वदः।।”

देवर्षि नाराय इन्द्र तथा अन्य श्रेष्ठ देवगणः के मन में दमयन्ती को प्राप्त करने की लाजसा उत्पन्न करने के लिए दमयन्ती की अद्भुत महिमा का इस प्रकार बलान करते हैं कि देवराज सहित समस्त देवश्रेष्ठ लोकपालगण भी दमयन्ती के स्वयंवर में चलने को तेयार हो जाते हैं-

“तां रत्नभूतां लोकस्य पार्थयन्तो महिलितः।

_____________________
श्रुत्वेव चाबुकानु हप्ता गच्छामो वयमयुता।”

इस प्रकार देवर्षि नाराय द्वारा पृथ्वी लोक पर विदर्भ नरेश भीम की पुत्री दमयन्ती के स्वयंवर का समाचार सुनकर समस्त देवगण देवराज इन्द्र सहित विदर्भ देश में जाते हैं।

तपस्वियों एवं भक्तों को पुजारी

महाभारत के अनुश्रासनपर्वः (दानधर्म पर्व) में युधिष्ठिर द्वारा तीनों लोकों में पूजनीय पुष्प की विषय में पूछे जाने पर पितामह भीम उन्हें इस विषय में देवर्षि नाराय एवं श्री कृष्ण का ब्रह्मान्त सुनाते हैं कि एक बार देवर्षि नाराय द्वारा हाथ जोड़कर उन्नत ब्राह्मणों की पूजा करते देव भगवान् श्री कृष्ण उन्हें पूछते हैं कि है धर्मालोकों में श्रेष्ठ देवर्षि! आपको हृदय में जिनके प्रति आदर है जिनें आप नतमस्तक हो प्राप्त करते हैं उन पूजनीय पुष्पों का क्या लक्षण है? श्री कृष्ण से इस प्रकार का प्रश्न सुनकर देवर्षि नाराय उन्हें उन अधिकारी जानकार पूजनीय पुष्पों के लक्षण बताते हैं। देवर्षि नाराय कहते हैं जो लोग वर्ण, वायु, आदित्य, परज्य, अग्नि, रुद्र, कार्तिकेय, लक्ष्मी, विष्णु, ब्रह्म, चन्द्रमा, जल, पृथ्वी और

1. महाराज 3/54/21,22.
सरस्वती को सदा प्रणाम करते हैं वे पुश्च सर्वध पूजनीय हैं। तपस्या ही जिनका धन है, जो वेदों के ज्ञाता तथा वेदोदक्त धर्म का ही आश्रय लेने वाले हैं उन पुरस्क का में पुजारी हैं:-

“तपोधानान् वेदविवो नित्यं वेदपरायणान्।
महार्यान् वृणिशाऱ्डल सवा सम्पूज्यायमहम्।”

जो विद्विस्वूयक यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं कामाशील, जितेन्द्रिय, सत्य, धर्म, गी के पुजारी हैं जो सदा समस्त प्राणियों पर प्रसन्नचित रहते हैं, गुरु को प्रसन्न रखते हैं, सन्नाशील, सन्तप्रतिज्ञ, समता रहित, धन एवं सुख की चिन्ता से रहित, ब्रह्मचारी एवं वेदशास्त्र के ज्ञान से सम्पन्न ब्राह्मण हैं, वे सदैव सर्वध पूजनीय होते हैं। इत्यादि एवं फलोक का सुख प्रदान करने वाले इन ब्राह्मणों की सेवा पूजा करने वाले पुरुष सुर्गम संकटों से पार हो जाते हैं।

इस प्रकार देवर्षि नारद श्रीकृष्ण से उत्तम पूजनीय पुरुषों के लक्षण बताकर तथा उनका पूजन करने का सार्वे देकर वहाँ से प्रस्थान करते हैं।

भवित प्रचारक नारद

महाभारत के अनुशासनपर्व (दानधर्मपर्व) में देवर्षि नारद भवित प्रचारक के रूप में दर्शनीय हैं। पुण्यतिथियों में रहने वाले पुण्डरीक नामक ब्राह्मण को देवर्षि नारद नायकृत भवित का उपदेश देते हैं तथा भगवान् नारायण की महिमा भी बताते हैं। पुण्डरीक का ज्ञानयोग का उपदेश देते हुए देवर्षि नारद कहते हैं कि यह ज्ञानयोग किसी वयित्रित्व विशेष से प्रकट नहीं हुआ, यह अनादि है तथा वेदों और शास्त्रों के अर्थ का सारबुद्ध है–

“श्रुपुष्प्याविस्तात् ज्ञानयोगमनुत्तमम्।
अप्रभृतस्तं प्रभृतार्थं वेदशास्त्रार्थसारंकम्।”

1. महारा- 13/31/8.

127
नारायण शब्द का महात्म्य बताते हुए देवर्षि नारद कहते हैं, नर से सम्पूर्णतत्व प्रकट हुए हैं, इसलिए उन्हें नार कहते हैं। नार ही भगवान् का अपन-निवास स्थान है, इसलिए वे नारायण कहलाते हैं-

“नराजजातात्मि तत्त्वानि नारायणीति ततो विदुः।
तात्त्वेव चायानं तत्स्थय तेन नारायणः स्नूत।”

सृष्टिकाल में सम्पूर्ण जगत नारायण से ही प्रकट होता है और प्रलयकाल में उन्हीं में लीन होता है। नारायण ही परशुराम हैं, परशुराम सत्स नारायण ही सम्पूर्ण तत्व है, वे ही पर से भी परे हैं। उनके अतिरिक्त दूसरा को परतत्व नहीं है-

“नारायणः परं बहु तत्त्वं नारायणः परः।
परावर्षि परशाचारी तस्मानाश्च तिरत परस्।”

शास्त्राध्य के सम्पूर्ण गहन विचार का त्याग करके अनन्यतित से सर्वव्यापी अजन्म नारायण का जो आलस्य रहित होकर ध्यान करता है वह उत्तम गति को पाता है। जो “अः नमो नारायणाय” इस अष्टाश्चर मन्त्र को सनातन ब्रह्मसूत्र जानता है और अन्त्यकाल में इसका जप करता है, वह भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है। ब्रह्माचारी, गृहस्थ, बाङ्गप्रस्थ या संन्यासी सभी भगवान् नारायण की आराधना से ही श्रेष्ठ फल पते हैं। इस प्रकार देवर्षि नारद के मुख से नारायण भक्ति का महात्म्य सुन भक्त पुकारक दिन-रात भगवान् नारायण की आराधना करके भगवान् का साश्वात्कार प्राप्त करते हैं।

नारायण भक्ति नारद

भारत के शाहिदर्वर में देवर्षि नारद श्वेत महाश्री में पहुँचकर वहाँ रहने वाले श्वेत वर्ण के नृत्याधीन के समक्ष पहुँच कर उनसे सत्कार प्राप्त करके भगवान् नारायण के दर्शन के अभिलाषी होकर उनकी स्तुति करते हैं-

1. महाद- 13/124/6.
"नमस्ते देवदेवा। निनिक्रिया। निषुल्या। लोकसाधिना। क्षेत्रजा। अनन्त। पुष्पा। निषुल्या। प्रधाना। अमृता। व्योमा। सनातना। सदस्यस्यात्मक। त्र्यत्थतामना। पूर्वविदेश। बसुप्रसा। प्रजापते। महामूर्ते। बालध्व। भक्तवत्सल। बालामण्यदेवा। भक्तोहं त्वा विद्वृक्षः।”

विश्वनाथार्थि भगवन् इन गुण नामों द्वारा स्तुत होकर मुनिश्रेष्ठ नारद को दर्शन देते हैं तथा कहते हैं कि इस व्यक्ति ने अनेक एकत, द्वित, निज मुनियों ने उनके दर्शनार्थ तपस्या की है; लेकिन कोई भी अन्यभक्तियुक्त पुष्प नारायण का दर्शन करने में सक्षम नहीं हुआ है; लेकिन देवर्षि की अन्तर्गत भक्ति देवकर ही उन्होंने देवर्षि नारद को दर्शन दिया है। भगवान् नारायण उन्हें अपने नर-नारायण रूप की भक्ति करने का निर्देश देते हैं अंव वर सामने को कहते हैं। तब देवर्षि नारद कहते हैं कि उन्होंने जब भगवान् का साक्षात् दर्शन कर किया, तब इससे बढ़कर दूसरा वर उनके लिए और कौन-सा है?

“अद्य मे तत्परो देव यथस्य नियमस्य च।
सद्यं फलमांवतं वै ज्ञृत्रो यथ्यायनम्।।
वर एष ममात्यन्तरं वृद्धस्तवं यतस्तात्तना।।
भगवान्तिवर्वषवृत्सत्संहं: सर्वसृष्टिंमहाप्रभु:॥”

देवर्षि की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् नारायण देवर्षि नारद को उपदेश देते हैं तथा अपने कृपा, बलभद्र, प्रहुतु, अनिधि, हंस, हयंशिरा इत्यादि (भूत तथा भविष्य को) अवतारों के बारे में बताते हैं। इस प्रकार भगवान् नारायण के दुर्लभ दर्शन एवं उपदेश प्राप्त करके देवर्षि नारद नर-नारायण के दर्शनार्थ बदरिकाश्रम के लिए प्रस्थान करते हैं। बदरिकाश्रम पहुँच कर देवर्षि नारद नर-नारायण ऋशि का दर्शन करके उन्हें श्वेतश्रीप में प्राप्त हुए भगवान् नारायण के अनुभव का आलयन सुनाते हैं तथा नर-नारायण ऋशि उनके भाव की सारहना करते हुए कहते हैं कि देव कर्म करना चाहिए, क्योंकि देवकर्म उत्तम यज है और

1. महा- 12/324/4.
2. यष्टी- 12/326/15,16.
या सनातन परमात्मा का स्वरूप है, उसी निमित्त में शासुदेव की सदा पूजा किया करता हूँ -

“स्वयंतत्कथितं पूर्वं देवं कर्त्तव्यमित्यपि।
देवतं च परो यजः: परमात्मा सनातनं।।”

इसके अतिरिक्त देवर्षि नारद नर-नारायण ऋषि के साथ पितृ पिण्ड सज्जन जानवाले करते हैं।

प्रेरक नारद
(क) वनपर्व में –

महाभारत के वनपर्व के ‘तीर्थयात्रापर्व’ में सत्यपराक्रमी पाण्डुकुमार अर्जुन के कामकाज में चले जाने पर 2 शोक सन्तप्त पाण्डवों को सात्त्विना तथा प्रेरणा देने के लिए देवर्षि नारद पाण्डवों के पास आते हैं। अर्जुन के वियोग में व्याकुल द्रौपदी सहित चारों पाण्डवों को तीर्थ सहिता सुनाते हुए तीर्थ यात्रा करने की प्रेरणा देते हुए प्रेरक के रूप में वर्णित है।

यहाँ देवर्षि नारद पाण्डवों को सात्त्विना देते हैं तब मुखिश्चिर देवर्षि नारद से तीर्थ यात्रा में तत्पर होकर पृथ्वी की परिक्रमा करने का फल पूछते हैं तो देवर्षि नारद महर्षि पुलल्य द्वारा पितामह भीष्म को बताई गई तीर्थ महर्षि पाण्डवों को सुनाते हुए कहते हैं हरिषार तीर्थ में तपस्या करते हुए भीष्म के पास आकर महर्षि पुलल्य ने उनके इन्द्रिय संयम तथा ज्ञात्मान से संतुष्ट होकर उन्हें जब पर मांगने को कहा तो भीष्म ने उनसे तीर्थों से होने वाले पुण्य के विषय में पूछा; तब ज्ञानिव ज्ञान ने कहा कि इन्द्रिय संयम वाला तथा विच्छिन्न तप, कीर्ति सम्पन्न पुण्य ही तीर्थ सेवन के फल को पाता है -

“यस्य हस्तो च पाठो च मननश्चेव सुसंयंतमम्।

1. महाभ - 12/333/4.
2. (देवर्षि नारद के निर्देशानुसार पाण्डु द्रौपदी विषयक नियम बनाते हं कि एक अलग के साथ अन्तिमतर में द्रौपदी को जा दूसरा देखने उसे चौथे वर्ष का वन्धु सहना होगा। अर्जुन द्वारा इस नियम का भंग होने पर अर्जुन चौथे वर्ष के लिए बन को चले जाते हैं।) महाभ का पर्व।
विध्या तपश्च कृतिःऽव स तीर्थफलमशनुते।”

तीर्थ यात्रा के फल का वर्णन करते हुए ऋषिवर कहते हैं कि मनुष्य तीर्थ
यात्रा से जो फल पाता है उसे प्रचूर दक्षिणावले अनिन्द्यम आदि यजो द्वारा भी
नहीं पा सकता-

“अनिन्द्यमाविद्धिःऽणृपि निपुलकक्षणः।
न तत्तु फलमान्यते तीर्थभिवगमनेन यतः।”

सर्वप्रथम मनुष्यलोक में ब्राह्म के तीर्थ ‘पुष्कर’ की गहिन्या का वर्णन करते
हुए ऋषिक कहते हैं- पुष्कर में तीनों समय दस सहस्र कोटि (दस खबर) तीर्थों
का निवास रहता है। जो वहाँ स्नान करता है, देवताओं और चित्तों की पूजा में
संलग्न रहता है उस पुष्कर को अवबेद यज्ञ से दस गुण फल प्राप्त होता है-

‘दशकोटिसहस्राणि तीर्थोऽनि वेमहामले।
सामिन्यु पुष्करे वेषां त्रिसंध्वय कुशणनः।
लत्राथपीकं वः कुष्यातु पितृदेवाचने रतः।
अवबेदान्त दशगुणां फलं प्राहमनीषिणः।’

पुष्कर तीर्थ के पश्चात् जिन तीर्थों पर जाने का वर्णन है, उनके नाम हैं -
जम्बूमार्ग से तन्दुलकाश्रय सहा से अगस्त्य सरोवर, फिर कण्वाश्रय, यवातीतन
तीर्थ, महाकालतीर्थ, भटकट तीर्थ, अर्धु (आरु), फिर पिङ्खीतीर्थ, प्रभसतीर्थ,
तदन्तन्तर सरस्वती और समुद्र के संगम में जाकर स्नान करने से मनोष्य सहस्र
गोदान का फल तथा स्वर्ग लोक को गााता है-

“ततो गत्वा सरस्वत्या: सामसय च संगमे।
गोसहस्फलं तस्य स्वर्गलोकं च विन्धति।”

देवर्षि नारद कहते हैं, तदन्तन्तर उस वरदन तीर्थ में जाना चाहिए जिसमें
दुर्बिस्या ऋषि ने श्री कृष्ण को वरदन दिया था उसके बाद द्वारका, पिण्डारंत्यीर्थ,
यसुधारा - भद्रतुलझ - शारकुमारि - पञ्चनद - भीमा - योनि - श्रीकुड - विमल - वडवा - 
श्रवण - गणेशानु - देवका - कामसी - तीर्थ, दीर्घसु - तीर्थ, विनाशातिरिष्ठ - चमरवति - 
गोदूस्तेद - नागोदेश - श्राणान - कुमारकोट - श्रीकोट - सरस्वतीसंगम इत्यादि 
तीर्थों में जाने से अक्षय पूर्ण की पातित्त होती है।

tवनन्तर कुरूक्षेत्र तीर्थ की महिमा वस्ताने हुए देवर्थि नारद युधिष्ठिर से 
कहते हैं - वहाँ सरस्वती के तट पर धीर पुरुष को एक वर्ष तक निवास करना 
चाहिए क्योंकि तीत्रा आदि देवता सिद्ध, ऋषि सन्धर्मास्याराग भी उस पूण्यम 
ब्रह्मकेत्र को जाते हैं।

“गन्धर्विस्तर यस्ता: पन्नगाण्य महीनपते।

ब्रह्मकेत्र महापुण्यमभिगच्छति भारत।।

गतिः हि श्रद्धा युक्त: कुरूक्षेत्र कुरूड़ह।

फलं प्राणोति च तदा राजसुयाब्यमेधोऽऽ्।।”

कुरूक्षेत्र से सतत नामक तीर्थ, फिर गारिल तीर्थ, फिर पञ्चनद्वीप, 
कोटितीर्थ, वाराहतीर्थ, सोमतीर्थ, यश्नीतीर्थ, लोकोद्वारतीर्थ, दर्द्वीर्थ, फिर 
शंकुनीतीर्थ, सरस्वती तीर्थ, ब्रह्मावततीर्थ, सुतीर्थ, अमुमती तीर्थ, मातृतीर्थ, 
सोमतार्थ, ब्रह्मदुध्वतीर्थ, कोटितीर्थ, सरकातीर्थ, इलासपतीर्थ, किदान- 
किंजतीर्थ, कालशीतीर्थ तथा सरकातीर्थ के पूर्व में महात्मा नाराय तीर्थ है जो 
‘अभाजत्व’ के नाम से विख्यात है उस तीर्थ में स्नान करने मनुष्य प्राण लुत्पात 
के बाद देवर्थि नारद की आजा से उत्तम लोकों में जाता है।

“सरकर्ष्यतु पूर्णन नारदयम महालमनः।

तीर्थ कुरोक्षेत्रेण अभाजत्वम्यति विवृत्तम्।।

तत्र तीर्थों नर: स्नानत्वा प्राणानुसुङ्ग भारत।

नारदेनाथसुनुज्ञातो लोकानु प्राणोत्यंतरा।।”

तत्पत्रात् पुण्डरीक तीर्थ में प्रवेश करके फिर त्रिविश्पतीर्थ में, फिर मिश्रक 
तीर्थ में जाना चाहिए, जहाँ महात्मा व्यास ने सभी तीर्थों का मिश्रण किया है

1. महात- 3/83/6-8.
2. वशि- 3/83/81,82.
जिसका स्नान सभी तीर्थों के स्नान के तुल्य है। गंगासंह नामक तीर्थ में स्नान करने से सनुष्ठ को अश्वमेध एवं राजसूय यज्ञ का पुण्य भिंत है है

"तत्र सनायोल धर्मां दीनचारी समाहितः।
राजसूयास्वमेधाभ्यां फलं विन्दति मानवः।"

तदनन्तर देवर्षिनारद्युदिन्निरादिपाण्डवों को तथा ऋषि पुलस्वभीम पितामह को गंगासंग्रह, अयोध्या, चित्रकूट, प्रयाग आदि तीर्थों की महिमा तथा गंगा का माहात्म्य सुनाते हुए कहते हैं—सत्यतीर्थ, लोहिततीर्थ में स्नान करने के बाद गंगासंग्रह स्नान में स्नान करे जिससे तस अश्वमेघ यज्ञों के फल की प्राप्ति होती है—

"गंगायास्त्रेत्र राजेन्द्र सागरस्य च स्नाने।
अश्वमेध दशमुण वर्दन्ततं मन्निषिण्।।
प्रयाग के स्नान के विषय में कहा गया है कि जो इसमें स्नान करता है वह अश्वमेध राजसूय यज्ञ का पुण्य पाता है। केवल इस प्रयाग तीर्थ में ही साठ करोड़ यह हजार तीर्थों का निवास बनाया गया है—

"दश तीर्थं सहस्याणि पञ्चि कोटयस्तथापराः।
येषु सातिष्ठायन्तु कीर्तित्त्व कुरुन्नन्।।
"इसके पश्चात् गंगा तीर्थ की महिमा बताते हुए देवर्षि कहते हैं— गंगा में जहाँ कहीं भी स्नान किया जाए वह कुरुक्षेत्र के समान पुण्यदायी है। कन्नदेव में गंगा स्नान का विषेश महत्व है लेकिन प्रयाग में गंगा स्नान का सबसे अधिक फल होता है—

"कुरुक्षेत्रसम गंगा यत्र तत्रावमहिताः।
विशेषो वै कन्नदेव प्रयागे परम महत्।।"

1. महा० — 3/83/201.
3. वही— 3/85/84.
देवर्षि नारद युधिष्ठिरादि को तीर्थ यात्रा का महात्माय बताकर यात्रा करने की प्रेरणा देकर तथा अपने साथ अन्य ऋषि गुनियों को भी ले जाने का संकेत करके अन्त में उन्हें गुन, इश्वाकु, पुरु, पृथु की भौति राज्य प्राप्त करने का आशीर्वाद देकर अन्तर्भास हो जाते हैं—

"यथा मनुरश्रेयंश्वाकुर्यां पुर्वभायाः।
यथा वैष्णो महाराज तथा: तस्मन्विष्ठः॥
एवमाशवस्य राजानं नारो भगवानुष्ठिः।
अनुजाय्य महाराज तत्तनानत्त्रधियत॥" ।

इस प्रकार महाभारत के वनपर्व में देवर्षि नारद शोकमुख्य युधिष्ठिरादि को शुभ कर्म करके समय ब्यतीत करने अर्थात तीर्थयात्रादि द्वारा अर्जुन के विवेक का समय ब्यतीत करने की प्रेरणा देते हैं जिसका पालन कर पाण्डव पुण्यवन होते हैं तथा अपना खोया राज्य पुनः प्राप्त करते हैं।

(तब) आश्रमवासिक पर्व में—

महाभारत के आश्रमवासिक पर्व के भीतर समापित ‘नारदमहानपर्व’ में देवर्षि नारद के प्रेरक एवं समाचार प्रदाता रूप के दर्शन होते हैं। पाण्डवों को तपोबन से लौटे जब डो वर्ष हो जाते हैं तब वैष्णो से देवर्षि नारद भ्रमण करते हुए राजा युधिष्ठिर के पास आते हैं। पाण्डवों द्वारा सम्मानित हो उनके पूजे जाने पर देवर्षि नारद उन्हें धूतरास्त्र, गान्धारी एवं कुन्ती विषयक समाचार सुनाते हैं। देवर्षि नारद कहते हैं कि घोर तपस्या करने के पश्चात धूतरास्त्र, गान्धारी एवं कुन्ती दावानल से भस्म हो गए हैं। धूतरास्त्र की आज्ञा से संज्ञय हिंसात्मक पर तपस्या करने चले गए हैं। अपने सम्बन्धियों की मृत्यु का समाचार गुजरकर पाण्डवों एवं राज्य निवासियों को क्रृत्य करते देख देवर्षि नारद उन्हें सात्त्विन देते हुए कहते हैं कि धूतरास्त्रदि की सद्गति एवं दिव्य लोक प्राप्ति के विषय में उन्हें सन्देह नहीं करना चाहिए। क्योंकि उन्होंने अपनी कठिन तपस्या से उत्तम गति को प्राप्त किया है। देवर्षि नारद पाण्डवों को उन तीनों की हिंदी को ग्राह्य में

1. महाभारत 3/85/127-130.
प्रमाणित करने तथा श्राद्ध करने की प्रेरणा देते हैं क्योंकि पुण्य एवं भतीजा होने के नाते उनके मरणोपरांत के दायित्व पाण्डवों को ही करने हैं।

"करुणामहिसि राजेन्द्र तेषां त्वमुवक्रियाम्।
भावाभिषि: सहित: सर्वेर्तदेव विधीयताम्।"

इस प्रकार पाण्डवों को प्रेरणा देकर देववर्षिः अभिषेक स्थान को चले जाते हैं।

त्रिलोकगणी नारद

महाभारत में देवमंत्र नारद का गमन तीनों लोकों में बताया गया है अर्थात् देवमंत्र नारद की महत् अवधार है ये चौथ कृष्ण तथा लोक - लोकान्तरों में भ्रमण करते रहते हैं इसका प्रमाण देवमंत्र की वार्ता से मिलता है।

(क) सभा पार्व में-

महाभारत के ‘सभापार्व’ में देवमंत्र नारद वर्ष लोक से पृथ्वी पर अर्थात् इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर की विवाह सभा में आते हैं। युधिष्ठिर द्वारा अपनी अद्वैत सभा के विषय में पूछे जाने पर देवमंत्र नारद उस सभा को लोक - परलोक में देवी अन्य सभाओं की तुलना में श्रेष्ठ बताते हुए कहते हैं :-

"मानुषीपु मन मे तात वृष्टपूर्वा न वा श्रुता।
सभामणिमणि राजन् यथेष्यं तत् भारत।"

इन्द्रसभा का वर्णन करते हुए देवमंत्र नारद युधिष्ठिर से कहते हैं कि पुण्य फल से प्राप्त होने वाली इन्द्र सभा के निर्माण वर्ष इन्द्र हैं। आकाश में (वर्ष में) विराजमान वर्ष यह सभा नमस्कार में सौ योजन, चौड़े में ढेर सौ योजन तथा ऊँचाई में पाँच सौ योजन फैली हुई है:-

"शक्रस्य तु सभा विद्या भस्वरा कर्मभजिता।
स्वयं शक्रोण कौरव निर्मिताकर्षिमप्रभ्या।
विस्तीर्णी योजनश्लं शतमध्यध्यमायता।
वेदार्थाय कामगम्य पञ्चयोजनामुचिन्त।"

1. महाभारत 15/39/9.
2. बही 2/2/80.
3. बही 2/7/1,2.
देवराज इन्द्र इस सभा में इन्द्राणी, महुदगण, सिद्धगण, साध्यगण, देवगण सहित बिराजते है। यम की सभा का वर्णन करते हुए देवर्षि नारद का कथन है कि सो योजन विस्तार वाली तेजविक्षि, विद्य सभा विवश्वान के पुत्र यमराज के लिए विश्वकर्मा ने बनाई—

“तैंतसी सा सभा राजन्मभूवश्चात्मयजना।।
विस्तारायामसम्पन्ना भूयशी चारिः पाण्डवाः”

इसी प्रकार कुबेर की सभा का वर्णन करते हुए देवर्षि नारद सुधिठिर से कहते हैं कि कौलास की चोटी के समान उज्वल तथा ग्रह और चन्द्रमा के समान प्रभावशाली सभा कुबेर ने तपस्या से प्राप्त की—

“तपस्या निर्मिता राजन्मय वैश्वर्षिण सा।।
शशिप्रभा स्वेच्छरीणा कौलासकिर्दिरोपमा।।”

वरुण की सभा का वर्णन करते हुए देवर्षि नारद सुधिठिर को बताते हैं कि वरुण की रत्नादि से निर्मित सफेद तेज वाली सभा का माप यम की सभा जितना है—

“सुधिठिर सभा विद्या वरुणस्य सितप्रभा।।
प्रमाणों यथा याम्या शुभङ्गकर्तौरणाः।।”

दुर्योधन वर्षों बहसभाका वर्णन करते हुए देवर्षि नारद कहते हैं कि ब्रह्म सभा के परिसंहार का किसी को श्रोध नहीं है यह अत्यन्त सुखदायक है—

“न वेद विस्मिता या संस्थान्य वाचिः भारत।।
न च रूप मया तावस्यस्यस्यावाचनाः।।”

इस प्रकार देवर्षि नारद द्वारा वर्णित इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर तथा ब्रह्म सभाओं वर्णन से स्पष्ट है कि देवर्षि नारद की गति लोकान्तर में है तथा मन के

1. महा— 2/8/2.
2. वही— 2/10/1.
3. वही— 2/10/2.
4. वही— 2/9/1.
वेग के समान उनकी गति के दर्शन युधिष्ठिर का संदेश श्रीकृष्ण तक पहुँचाने वाली वारताने स्वतः ही होते हैं।

(खू) उद्घोष पर्व में—

महाभारत के इस पर्व में देवर्षि नारद जब स्वर्ग से अपनी पुत्री के लिए योग्य कर डूंढने के लिए जाते हुए मातलि के साथ पाताल लोक में नागलोक की यात्रा करते हैं तो इससे उनकी तीनों लोकों में गमनागमन की शक्ति का परिचय मिलता है। देवर्षि नारद वर्ण देवता से मिलने नागलोक जाते हैं। देवर्षि नारद मातलि के सहारे हैं कि वे तुम्हें पृथ्वी के नीचे के लोकों को दिखाते हुए वहाँ की सब वस्तुओं का परिचय दूढ़गा वहाँ हम दोनों किसी योग्य वर को देखकर पसन्द करेंगे। इससे जाना होता है कि देवर्षि नारद का पृथ्वी से नीचे लोकों में भी आना जाना प्रायः बना रहता था—

“अहं ते सर्वमार्गायायेदर्शियन् वसुदातालम्।

दृष्ट्वा तत्र वर्त कचिद् रोचिष्ठ्याय मातले॥”

देवर्षि नारद पाताल लोक में निवास करने वाले सभी प्राणियों को जानते थे अतः इन्द्रार्थि मातलि को वहाँ की सब वस्तुओं के बारे में विस्तारपूर्वक बताते हैं—

“नारदः सर्वभूतानांमन्तरभूमिनिवासिनाम्।

जानिष्ठदकार्यावानं यन्तु: सर्वसमध्ये।॥”

नागलोक में देवर्षि नारद मातलि का परिचय वर्ण के पुत्र—पौरों तथा सम्बन्धी जनों से करवाते हैं ताकि इन्द्रार्थि मातलि अपनी पुत्री के लिए सुयोग वर ढूँढ सकें। तत्पश्चात् देवर्षि नारद मातलि को पाताल लोक ले जाते हैं जो कि नागलोक के नाभिस्थान में स्थित है इसमें देव्य—दानव निवास करते हैं :—

1. महारथ—5/98/5।
2. यही—5/98/9।
“एतत् तु नागलोकस्य नामविश्वासे स्थितं पुरुष।
पाठलिपिः विविधार्त दैत्यदानव सेवितम्।”

मातलिं को नागलोकं में अपनी पुत्री को योग्य वर पशुद्व न आने पर वे
देवर्षि नारद के साथ हिरण्यपुर की यात्रा करते हैं। देवर्षि नारद कहते हैं सोने
चाँदी वैद्यमणियुक्त तथा शिल्प शास्त्रीय विधान के अनुसार अंगुलो के शिल्पकार
मह ने पाठल में भीतर इस हिरण्यपुर का निर्माण किया है-

“अनत्येन प्रयत्नेन निर्मितं विश्वकर्मण।
मध्येन यममस्य नृपदं पाठलतलमाधिकितम्।”

हिरण्यपुरवासियों से भी मातलिं की मनान: संतुष्टि न होने पर देवर्षि नारद
उन्हें गुरुहरकोक की यात्रा करवाते हैं :-

“अयं लोकं: सुपर्णानां पक्षिणां पन्नगाशिनाम।
विख्ये गमने भारे नेनाम्मिति परिःज्ञः।”

गद्दि की अन्य सन्तानों से भी मातलिं के सन्तुष्ट होने पर देवर्षि नारद
उन्हें सुरभि गो के नियाय स्थान रसातल में ले जाते हैं-

“इदं रसातलं नाम सप्तमं पुरुषीवीतलम।
यत्राती सुरभिमाति गवाममृतसाम्भवा।”

तदनन्तर देवर्षि नारद मातलि की नागराज वासुकि द्वारा सुरक्षित भोगवती
पुरी का यात्रा करवाते हैं जो इन्द्र की नगरी अमरावती के समान सुख समृद्धि से
सम्पन्न है-

“इदं भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता।
यादृश्ची देवराजस्य पुरीवायमरावतः।”

1. महात 5/99/1.
2. वही 5/100/2.
3. वही 5/101/1.
4. वही 5/102/1.
5. वही 5/103/1.

138
देवर्षि नारद ग्राहक से बासुरक, तत्काल, धनुजय, कालिय, नहू, आर्यक
इत्यादि बलशाली नागों के बंश का तथा उनके पराक्रम का वर्णन करते हैं वहीं
इन सब नागों का परीक्षण करते हुए ग्राहक एक नाग से प्रभावित होकर देवर्षि
नारद से उस कालिशाना नागकुमार के कुल का परिचय पूछते हैं देवर्षि नारद
ऐश्वर के कुल में उत्पन्न उस समुख नाग नाग का परिचय देते हुए कहते हैं :-
“ऐश्वरकुले जात: सुमुखो नाम नागराजः।
आर्यकर्य मत: पीते वैधितो वामनसत्य च।।
एतस्य हि पिता नागशिरकुरो नाम ग्राहकः।
नविशादै दैनलधुः पञ्चत्वमुपसादित:।””

ग्राहक सुमुख नाग को अपनी पुत्री गुणकेशरी के विवाह के लिए उत्तम
समझते हैं तथा देवर्षि नारद सुमुख के माता पिता को ग्राहक के बल पराक्रम, बंश
का परिचय देकर गुणकेशरी तथा सुमुख का विवाह करवाते हैं। इस वर्णन से पता
चलता है कि देवर्षि नारद के पास तिलोकी में भ्रमण करने की शक्ति है तथा
वारे, गामलोक, गृहड्डोक, हिरण्यपुर, भोगवतीपुरी, रसातल, पाताल इत्यादि
उनके परिचित लोक हैं।

सहायक नारद

महाभारत के उद्धोगपर्व में देवर्षि नारद इन्द्र साथी ग्राहक की चित्ता का
निवारण करने हेतु उनकी पुत्री गुणकेशरी के लिए सुयोग्य पर दौड़ने में उनकी
सहायता करते हैं तथा ग्राहक को अपने साथ पृथिवी के नीचे के लोकों की यात्रा
करते हुए वहाँ के बलशाली थोड़ाओं से परिचित करवाते हैं, ताकि ग्राहक अपनी
पुत्री के लिए पाराक्रम बर का चयन कर सके। नागराज बासुरक की नगरी में
बासुरक, तत्काल, नहू, कालिय इत्यादि नागों का बल पराक्रम देखने के बाद
ग्राहक, सुमुख नागकुमार के उन सबसे श्रेष्ठ मानकर अपनी पुत्री के लिए
उसी की कामना करते हुए देवर्षि नारद से गुणकेशरी के विवाह का प्रस्ताव सुमुख

के माता पिता को सम्मुख रखने की प्रार्थना करते हैं। तब देवर्षि नारायण मातलि के बल पराक्रम का वर्णन करते हुए नागराज से कहते हैं—

“सुलोक्य मातलिनीम शक्रस्य वधित: सुहृत।”

आल्पान्तप्रभावश्च बासवेन रणेः रणेः।”

मातलि के गुण पराक्रम का वर्णन करने के बाद देवर्षि नारद उनके आगमन का प्रयोजन बताते हुए कहते हैं कि इन्होंने अपनी गुणकेशी नामी कन्या के लिए आपके पौत्र सुमुख का चयन किया है—

“अस्त्य कन्या वराहों रूपेणासुभूषी भ्रमिः”

सुमुखो भवत् पौत्रो रोघते बुहितुः पति:।”

गुण केशी के रूप शीत गुण इन्द्रियसंयम इत्यादि गुणों का वर्णन करने के पश्चात् देवर्षि नारद गुणकेशी—सुमुख विवाह को सम्भवति देने के लिए नागराज आर्यक से अनुरोध करते हैं। तथा स्वयं चलकर कन्यादान करने को उद्घाट हुए मातलि का सम्मान करने का भी परामर्श देते हैं—

“अभिगम्य स्वयं कन्यामयं चातु समुदायज। मातलिस्तत्तयं सम्मानं कर्तुमहं भवानिं।”

नागराज आर्यक देवर्षि नारद से अपनी व्यक्ति बताते हैं कि उनका पुत्र विदुर, गुड्डा का प्राप्त बना लिया गया है। तथा दूसरे महंतों में सुमुख को अपने भोजन के लिए गुड्डा ने पहले ही चुन लिया है। देवर्षि नारद नागराज आर्यक की तथा मातलि की चिन्ता निवारण के लिए उन्हें देवराज इन्द्र के सम्बन्ध- चलकर समाधान पाने को कहते हैं। देवर्षि नारद इन्द्र से मातलि से सम्बन्धित वृत्तान्त

1. यहां— 5/104/1,2.
2. वही— 5/104/5,6.
3. वही— 5/104/11.

140
बताते हैं तभी भगवान् विष्णु देवराज इन्द्र को आदेश देते हैं कि वे सुमुख को अमृत देकर देवताओं के समान अमर बना दें ताकि गाढ़ उन्हें गाह न सके—

“लत: पुरनवर विष्णुश्रवाच भुवनेववर।
अमृतं दीयतामस्मे किरिताममरे: समः॥”

इन्द्र की सभा में भगवान् विष्णु के आदेश से गाढ़, नारद और सुमुख को इन्द्र से इष्टानुसार अमृत मिलता है तथा उनके अभी वर्तमान सात होती है—

“गाढ़लिनार्वश्चेव सुमुखश्चेव वासव।
लभ्न्या भवत्: कामात् कामेवतं यथेष्टतम।”

इस प्रकार देवर्षि नारद की सहायता से सुमुख नाग इन्द्र से अमरत्व का वर प्राप्त करता है गाढ़, नारद की पुष्पी विपर्यक्ष चिन्ता का निवारण होता है, गुणवत्ता तथा सुमुख का सुखपूर्वक विवाह होता है और वह पत्नी सहित अपने घर को चला जाता है।

“लक्ष्या वरं तु सुमुख: सुमुख: सम्भूव ह।
कृतदर्शो यथाकम् जगाम च गुहान्नु प्रति।”

प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट है कि देवर्षि नारद त्रिलोकी के सभी प्राणियों के दुःख निवारण हेतु उनकी सहायता करने के लिए उन्हें उचित भागीर्घण करने में समर्पित है।

कलहप्रय किन्तु हितकारी

महाभारत के शास्तिकिय में देवर्षि नारद के कलहकारी रूप के दर्शन होते हैं। देवर्षि नारद शालमलि वृक्ष एवं पवन के बीच कलह करते हैं लेकिन उस कलह के पीछे शालमलि वृक्ष का दर्पण भंडन करके उसके हित की भावना ही निहित है। हिमालय पर्वत पर अनेक वनों से उदितग्रामान, शालमलि और रक्षन खलशुद्धक एक बहुत बड़ा शालमलि का वृक्ष होता है; जिसकी घनी छाया में हाथियों के यूक और अनेक पशु प्रीय का काल में गर्मी से आर्थ हाने पर विश्राम

1. महाभ— 5/104/24.
2. वही— 5/104/25.
3. वही— 5/104/30.
करते। एक बार देवर्षि नारद उस शाल्मलि बुझ के स्वन्ध और बहुत सी शाल्मलियाँ देखकर उससे कहते हैं कि तुम्हारे बेहँ स्वन्ध और सब शाल्मलियाँ पवन द्वारा टूटी हुई न देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि पवन तुम्हारा मित्र है और वह सदैव तुम्हारी रक्षा करता है इसलिए तुम उसकी प्रसन्नता के कारण फूल पत्तों से सुशोभित हो रहे हो--

“किं नु ते पवनस्तात प्रीतिमानथ वा सुहुला। त्यां रक्षति सता येन वनेत्रत पवनो धुम्मु।”

देवर्षि का कथन सुनकर शाल्मलियों को भावना दुःख कहता है कि वायु उसका कोई मित्र, बन्धु या विधाता नहीं है जो उस पर अनुकम्पा करके रक्षा करे उसका तेज बल तो वायु से भी प्रबल है, वायु तो उसके बल के अटाहरें भाग के एक भाग को समान भी नहीं।

“बस तेजो बलं भीम वायुपरिः हि नारद। कलामपदावशी राणीं में प्रान्नोति मालेत।”

जिस वायु के प्रशान्त भाव से रहने पर सभी प्राणी जीवित रहते हैं तथा अशान्त होने पर सब जीव नष्ट होते हैं उस वायु के लिख यह शाल्मलि की विपरीत बुझ जानकर देवर्षि नारद उसके अभिमान का नदन करने हेतु शाल्मलि के सभी कटु बल पवन से जाकर कह देते हैं, जिससे कोडित होकर पवनदेव शाल्मलि बुझ से कहते हैं कि तुम्हारे देवर्षि नारद के निकट मेरी निन्दा की है इसलिए मैं बलपूर्वक तुम्हें अपना प्रभाव दिखाऊँगा। पितामह ब्रह्मा ने तुम्हारे गूल में विश्रम किया था इसलिए मैं तुम पर अनुमुह करता था--

“शाल्मले नारदो गद्दछस्त्वयोऽत्रो मद्विगहणम्। अः वायुः प्रभावं ते वर्षायाम्यात्मनो बलम्। पितामह प्रजासत्यं त्यथिह विश्रान्त्ववान्प्रभुः।”

1. महा रत्रुषा - 12/154/13.
2. वही - 12/155/6.
3. वही - 12/156/6,7.

142
इस प्रकार शाल्मलि और पवन में परस्पर चाकुण्ड होता है। पवन उसे अपना पराक्रम दिखाने की चेतावनी देकर चला जाता है। तदनन्तर शाल्मलि पवन के पराक्रम को विचारते हुए देवर्षि नारद के निकट वायु के विषय में कह्ने निम्नलिखित बयानों का पश्चाताप करता है तथा स्वयं को पवन के समक्ष असमर्थ जानकर एवं हुष्ठ होकर स्वयं ही अपनी सब शाखाओं, पत्तियों, डालियों और स्वन्धों का छेदन कर देता है। शाखाओं, पत्तियों रहित होकर वह वायु की प्रतिक्षा करने लगता हैं। बड़े-बड़े वृक्षों को गिराता हुआ स्रोतित वायु जब शाल्मलि के निकट पहुँचता है तो उसे पत्रुपाथों से रहित देख हरित होकर कहता है कि जिस प्रकार उसने स्वयंकार करके अपने पत्रों का छेदन किया है वायु ने भी वैसे ही करना था। शाल्मलि ने अपनी नीतियों के कारण ही अपना नाश किया है। वायु का ऐसा बयान सुनकर शाल्मलि देवर्षि नारद से कह्ने वचनों का स्वरण कर अनुताप करने लगता है।

इस प्रकार देवर्षि नारद के द्वारा हुए कहानी के माध्यम से शाल्मलि के अभिमान का गर्दन होता है तथा प्रेरणा मिलती है कि जो अप्यकुण्ड पुष्प स्वयं निर्विन्द होकर सबल के साथ वैर करता है वह शाल्मलि वृक्ष की भांति दुःखी होता है। इसलिए निर्विन्द को सबल से वैर नहीं करना चाहिए। समान बल वाले भी अपकारी के समीप में सहसा पराक्रम प्रकाशित नहीं करते वे लोग धीरे-धीरे शत्रु के निकट पराक्रम दिखाया करते हैं:

"एवं हि राजशाब्दुल बुर्किन्: सन्न बलीयम्।

शनें: श्रीरामचारिक दर्शायन्ति रस्मे बलमु।"

भान्तिहर्ता नारद

महाभारत के स्वर्गरूपायम् में देवर्षि नारद के भान्ति हरती रुप के दर्शन होते हैं। स्वर्ग लोक में धर्मराज युधिष्ठिर, दुष्योधन को स्वर्गीय शोभा सम्पन्न एवं
तेजस्वी देवताओं द्वारा सेवित होता देव अगर्ग युक्त होकर वहाँ से प्रस्थान करते हैं

“ततो युधिष्ठिरो दृष्टवा दुर्योधनममर्पितः।
सहसा सनिवृत्तोऽभूतिष्ठवर्य दृष्टवा सुयोधने॥”

युधिष्ठिर को अपना क्रोधित जान देवर्षि नारद उनकी भान्ति दूर करने के लिए उनसे वार्तालाप करते हैं तब युधिष्ठिर कहते हैं कि जिस दुर्योधन ने कारण महाभारत के युद्ध में उनके निद्रक से सम्भन्धी मृत्यु को प्राप्त हुए उनकी पत्नी पार्थाली को भी तो सब में अयुक्तमित होना पड़ा, ऐसा अधर्म करने वाला पापी दुर्योधन जो स्वर्ग में सुरक्षा भोग रहा है, उस दुर्ग के साथ स्वर्ग में रहना तो दूर, व उसे देखना भी पसन्द नहीं करेंगे। देवर्षि नारद युधिष्ठिर का वैर भाव शान्त करने के उद्देश्य से कहते हैं कि स्वर्ग में रहने पर पूर्व हेश शान्त हो जाता है

“स्वर्ग निवासे राजेन्द्र विरुद्ध चाँदि नश्यति॥”

देवर्षि नारद कहते हैं कि दुर्योधन ने युद्ध में अपने शरीर की आहूति देकर चीर गति को प्राप्त किया है; इसलिए वह स्वर्ग में समानित हो रहा है। उनके प्रति हेश रहना युधिष्ठिर जैसे धर्माचारी के लिए उचित नहीं। दुर्योधनादि की तरह युधिष्ठिर के अन्य सभी सम्भन्धी भी इसी प्रकार उत्तम लोगों को प्राप्त हुए हैं इस प्रकार देवर्षि नारद युधिष्ठिर की भान्ति दूर करते हैं।

सांगित विशारद नारद
महाभारत के उपलिपियों में देवर्षि नारद के गद्यबिंदु विशेषज्ञों होने का प्रमाण भीलता है

“गान्धर्व नारदो वेदं भारद्वा धनुर्यहम।
देवर्षिचरितं गाम्यं: कृष्णात्मेवर्षिपिल्लितम्॥”

1. महाभारत 18/1/6।
2. वर्षि 18/1/11।
3. वर्षि 12/203/11।

144
उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में कथयप नन्दन नारद
वीणाधारी, स्त्राक्ष-स्फटिक मालाधारी के रूप में श्वेत वस्त्र पहनने हुए अपनी श्वेत
दिव्य प्रभा से त्रिलोकी को आलोकित करते हुए नारायण नाम का ज्ञाप करते हुए
eवं अपनी वेद परास्त्रु बुद्धि झाँक राजाओं को कूटनीति, राजनीति, धर्मनीति का
उपदेश देते हुए एक नीतिज्ञ के रूप में तथा भक्तों को भक्ति का उपदेश देकर
tत्त्वज्ञ के रूप में यत-तत्र दृष्टिगत होते हैं। देवविंशों नारद के परामर्श से कहीं
राजाओं का कल्याण होता है तो कहीं देवताओं का सुयश फैलता है। इस प्रकार
महाभारत में देवविंशों नारद सन्देशवाहक, परामर्शक, उपदेशा, नीतिज,
भविष्यवक्ता, अन्तर्यामी, त्रिलोकगामी इत्यादि रूपों में दर्शनीय है।

*_*_*_*_*_*